सम्पादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.   वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वेदमंदिरका निर्माण

पारडी जि० सूरतमें हमने पारडी-बलसाड मार्गपर एक १८ एकर का स्थान अमेरिकन मिशनसे स्वाध्याय-मंडलका प्रचार कार्य करनेके लिये खरीदा है। जहाँ वे मिशनरी ४० वर्षतक ईसाई धर्मका खूब प्रचार करते थे, और जिनके कारण सहस्रों हिन्दु ईसाई हो चुके थे, वही स्थान हमने लिया है और वहीं अपने सनातन वैदिक धर्मका ध्वजा लगा दिया है। जहां वेद-उपनिषद-गीता-रामायण-महाभारत आदि की निंदा होती थी, वहां ही आज ये ग्रंथ हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजीमें प्रकाशित हो रहे हैं और इन ग्रंथोंमें के शुद्ध सनातन आर्य धर्मके व्याख्यान भी वहीं हो रहे हैं। और हिंदीमें 'वैदिक धर्म' गुजरातीमें 'वेदसंदेश,' मराठीमें 'पुरुषार्थ' ये मासिक अपने धर्मके प्रचारके लिये यहांसे प्रकाशित होते हैं।

इस भूमिमें ईसाईयोंका गिरजा घर (चर्च) था। जिस समय यह भूमि हमने खरीद की, उस समय हमने उनसे कहा कि, इस चर्च (गिरजाघर) की चार दिवारी परसे तुम अपने चिन्ह भले ही ले जाओ, पर यह चार दिवारी जैसी है वैसी ही रखो। हम इसका उपयोग "प्रार्थना मंदिर" के रूपमें ही करेंगे, इसका दूसरा कोई उपयोग नहीं करेंगे। हमारे इतना कहनेपर और विश्वास दिलानेपर भी उन्होने कहा कि 'ईसाईयोंका मंदिर हिंदुओंके अधीन नहीं जा सकता' ऐसा कहकर उन सुशिक्षित अमेरिकन मिशनरियोंने अपने ही हाथोंसे अपना गिरजाघर (चर्च) तोड दिया और उसकी ईंटें, चूना, पत्थर, लकडी, छप्पर आदि जो भी था, वह सब बुनियादसे उखाड कर दूसरी जगह ले गये!!! सुशिक्षित अमेरिकन मिशनरियोंकी संमतिसे ईंटोंकी चार दिवारीके ही प्रभुके प्रार्थना मंदिर होते होंगे! अस्तु।

हिंदुओंने आजतक किसी धर्मके मंदिर गिराये नहीं हैं। इसलिये हम इसी स्थान पर, इसी बुनियाद पर अपना 'वेद मंदिर' बनाना चाहते हैं। वेद मंदिर उसी बुनियाद पर बनाना है और वह बुनियाद ५१×१८ फूटकी है। इस बुनियाद पर १२ फूट ऊंचा यह वेद मंदिर बनेगा।

१ इस 'वेदमंदिर' में अपने वैदिक धर्मके सब ग्रंथ रखे जायगे, जो वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत, स्मृति आदि सभी ग्रंथ भाषानुवाद सहित यह रहेंगे, जो लोग यहां पढनेके लिये आयेंगे, वे इन ग्रंथोंको पढेंगे। यहां लोग आकर विना मूल्य धार्मिक ग्रंथ पढेंगे। यहां विनामूल्य वाचनालय रहेगा।

२ यहां इस 'वेद मंदिर' में साप्ताहिक सत्संग होगा, जिसमें वेद-उपनिषद और गीताकी कथा होगी, धर्मके प्रचारार्थ व्याख्यान होंगे। पवित्र दिनोंमें उत्सव होंगे।

३ सध्या, हवन, वेदपाठ आदिकी शिक्षा जो सीखनेके लिये आवेंगे उनको विना मूल्य दी जायगी।

४ इस 'वेद मंदिर' में हरएक बाल, तरुण, वृद्ध स्त्रीपुरुषको आरोग्य रक्षणके लिये अत्यावश्यक जितना योग-साधन, सूर्य नमस्कार आदि योगके व्यायाम हैं, उतना सब सिखाया जायगा। इसका कोर्स ३ दिनसे १५ दिनतक रहेगा।

५ यहां शुद्धिका कार्य होता रहेगा।

इस उद्देश्यसे यह "वेद मंदिर" बनवाना है। इसके लिये आवश्यक सरकारी आज्ञा मिली है और अच्छे इंजिनियरसे पक्का "वेद मंदिर" बनानेका अंदाजा व्यय १००००) दस हजार रु. का हुआ है। इसमें बीचमें वेद मंदिर होगा। तीन कमरे और चारों ओर अच्छा पुष्पोंका सुन्दर उद्यान बनेगा।

आप इस 'वेद मंदिर' का महत्व जानकर इसकी उचित सहायता कीजिये। इसकी सिद्धताके लिये जो सहायता दे सकते हैं वह सहायता शीघ्र भेजनेकी कृपा करें, क्यों कि जितनी शीघ्रता हो सकेगी उतनी करके इस 'वेद मंदिर' को अतिशीघ्र खडा करके उक्त कार्य अति शीघ्र शुरू करना है।

सहायता देनेवालोंके नाम प्रकाशित किये जायगे;

भवदीय.

श्री० दा० सातवलेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल आनंदाश्रम किल्ला-पारडी. जि० सूरत.

वेदमंदिरका चित्र

वर्ष ३४ वैदिक धर्म अंक २
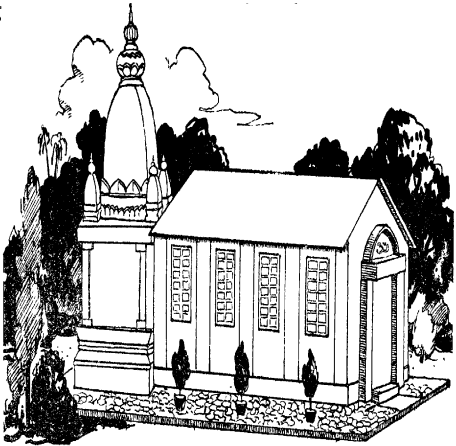
क्रमांक ५०

▲ माघ, विक्रम संवत् २००९, फरवरी १९५३ ▲

सबकी सुरक्षा

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्र शोचिर मर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्यः । अथर्व ८।३।२६

शुद्ध प्रकाश देनेवाला अमर, पवित्र, पवित्रता करनेवाला, स्तुतिके योग्य अग्नि राक्षसोंका नाश करता है (और सबको सुरक्षित करता है)।

वीर दूसरोंको शुद्ध मार्गका दर्शन करावे। अपमृत्यु दूर करनेका प्रयत्न करे, स्वयं पवित्र बने दूसरोंको पवित्र बननेका मार्ग बतावे, सदा उत्तम प्रशंसा योग्य शुभ कार्य करे, शत्रुको दूर करे और सबको सुरक्षित करनेका प्रयत्न करे।

मेरे सपनोंका भारत

ले० श्री प्रकाशवीरजी विद्याभास्कर
(प्रकाशक- राममोहन बी० कॉम० चन्दौसी, मूल्य २-०-० रु.)

जिस व्यक्तित्वके दर्शन प्रस्तुत पुस्तकमें पाठकोंको होंगे उसका जो परिचय गतमास मैंने हैद्राबादके दौरेमें किया उसका वर्णन अप्रासङ्गिक न होगा। युवक लेखककी यह प्रथम ही पुस्तक है और सम्भवतः यही कारण है कि वह अत्यन्त संक्षिप्त है। एक कारण और भी है और वह यह कि विद्वान् लेखक लेखककी अपेक्षा प्रखर वक्ता हैं। आजतक जनताके सन्मुख वे एक प्रकाण्ड वक्ताके रूपमें ही सामने आये हैं। हैद्राबाद राज्यमें जब वे पहुँचते हैं तो वहाँकी जनता इतनी बड़ी संख्यामें उनके व्याख्यानोंमें उपस्थित होती है जितनी कि अन्य किसी भी बड़ेसे बड़े नेताके व्याख्यानमें भी उपस्थित नहीं होती! यह सब लिखनेका अभिप्राय किसीसे किसी प्रकारकी कोई तुलना न करके केवल मात्र यही दिखाना है कि इनके वक्तृत्वमें एक ऐसा आकर्षण और जादू है जो कि जनताके हृदयोंको बलात् मोह लेता है। कलकत्ताके आर्य सम्मेलनके अवसरपर गोरक्षाके विषयमें जब हमारे ले. श्री प्रकाशवीरजीका भाषण हुआ तो माननीय श्री काटजू सा०ने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा था कि ' बहुत सुन्दर, बहुत अच्छा बोलते हैं आप, ऐसा व्याख्यान वर्षों बाद सुन रहा हूँ। दरभङ्गामें जब उनके भाषण हुए तो महाराजा दरभङ्गाने एक विशेष कार्यक्रम रखकर उन्हें सम्मानित किया। इन्दौर और हैद्राबादके पुराने आर्य कार्यकर्ताओंको हमने यह कहते सुना है कि ऐसे व्याख्यान हमने पिछले दस, पन्द्रह वर्षोंसे नहीं सुने हैं। यह सब देख और सुनकर मेरा हृदय आनन्दसे भर गया और जब ' मेरे सपनोंका भारत ' पुस्तक मेरे सामने आई तो मैं एक ही सांसमें उसे पढ़ गया।

मैं पुस्तककी समालोचना करते हुए अपनी ओरसे कुछ न लिखकर भूमिका लेखक आचार्य श्री वाचस्पतिजी शास्त्रीके शब्द ही उद्धृत कर देना अधिक उपयुक्त समझता हूँ। वे लिखते हैं- ' सन्तोष है स्वराज्य आया परन्तु अफसोस है जो सुराज्य अभीतक नहीं आया। अपने ही शासनकी स्थापनाके समय शासनयन्त्रमें कुछ ऐसे भी तत्त्व समाविष्ट होगये जो या तो भारतीय भावनाओंको जानते नहीं थे अथवा वे जानबूझकर भारतीय हृदयके साथ खिलवाड़ करना चाहते थे। इसीलिये देशके टुकड़े हुए, राष्ट्रभाषा हिन्दीको १५ वर्षका वनवास मिला, गोरक्षा न हो सकी और सेक्यूलर स्टेटकी आड़में संस्कृतिके वे अवशेष भी बुरी तरह मिटाये जाने लगे जिनको पराधीनताके दुर्दिनोंमें हम छातीसे चिपटाकर बचाते रहे थे। इन सब बातोंने आर्य संस्कृतिके भक्तोंकी आशाओंपर तुषार पात कर दिया और उनके हृदय वेदनाओंसे भर उठे तथा आर्यसंस्कृतिके अपमानके विरुद्ध विद्रोहकी भावना उभर खड़ी हुई। संस्कृति-रक्षाकी ये जागृत ज्वालायें जिन अनेक हृदयोंमें जल रही हैं उन्हींमेंसे एक युवक भाई प्रकाशवीर भी हैं। अतः उनकी इस पुस्तकमें स्थान स्थानपर वे ही विचार बोलते हुए प्रतीत होंगे। पुस्तक पढ़ते ही संतप्त हृदयसे निकले उन भावोंसे जहाँ अधिकांश पाठक तड़प उठेंगे राष्ट्ररक्षाके लिये, वहाँ कुछ शान्तिप्रिय (?) व्यक्तियोंको निराशा भी होगी। परन्तु उन्हें यह सोच लेना चाहिये कि आगकी ज्वालाओंसे तो स्फुलिङ्ग ही निकलते हैं, शीतल सीकर नहीं। '

माननीय लेखक पुस्तकके अन्तमें लिखते हैं कि ' इन्हीं सब समस्याओंपर सोचते-सोचते अन्तमें यहीं आकर बुद्धि ठहरती है, जैसा किसी कविने लिखा है—

उज्वल रहा अतीत, भविष्य भी महान् है। यदि संभल जावे जो कि वर्तमान है॥

इसी आधारपर अतीतसे कुछ लेते हुए, उन्नत भविष्य निर्माणकी कामनासे इस पुस्तिकामें वर्तमानके ऊपर कुछ दृष्टिकोण उपस्थित किये हैं।.... .... परमात्मा इस देशके सच्चे सपूतोंको वह क्षमता प्रदान करें कि **आगामी सन ५७ में मनाई जानेवाली स्वाधीनता संग्रामकी शताब्दितक वह पुनः अपने वास्तविक और पुरातन स्वरूपमें आ जांय और भारतीय संस्कृति-सभ्यता अपने पुरातन गौरवमय स्वरूपको धारण कर विश्वका पथ प्रदर्शन कर सके।** '

पुस्तक पढ़नेपर यही प्रतीत होता है 'काश कुछ और पढ़नेको मिल जाता?' 'पुस्तक कुछ और बड़ी होती।'

सहसम्पादक

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखाङ्क २३]

(लेखक— पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

• • • • • • •

आदर्श भक्तोंका स्वरूप

दो आदर्श भक्त

पिछले लेखोंमें भारतमें प्रचलित आजके भक्तिमार्गके स्वरूपपर विचार किया। अब हम वर्तमानकालमें प्रचलित भक्तिमार्गकी प्राचीन मार्गसे तुलना करेंगे। भगवान श्रीकृष्ण का समय ५००० वर्ष पूर्वका तथा भगवान रामचन्द्रका समय उससे भी प्राचीन कालका है। भगवान रामचन्द्रका अवतार वैदिकधर्मकी मर्यादाका पालन करनेके लिये ही हुआ था ऐसी प्रसिद्धी है। श्रीकृष्णके जीवनमें सम्भवतः कहीं२ नियमभङ्ग भी दिखाई देजाय; किन्तु श्री रामचन्द्र का जीवन सोलह आने वैदिक मर्यादाओंके चौखटेमें जमा हुआ था।

इन दो अवतारी पुरुषोंके दो भक्त प्रसिद्ध हैं। इन्हें भक्तशिरोमणि, भक्तश्रेष्ठ अथवा आदर्श भक्त समझा जाता है। यदि कोई यह पूछे कि भक्त किस प्रकारका होना चाहिये तो उसका एकमात्र सुन्दर उत्तर यही हो सकता है कि इन दो भक्तोंके समान भक्त होना चाहिये।

ये दो भक्त हैं हनुमान् तथा अर्जुन। भगवान रामचन्द्रका भक्त हनुमान एवं भगवान् श्रीकृष्णका भक्त अर्जुन। वाल्मीकीय रामायणमें हनुमान्‌का जीवनचरित्र है तथा महाभारतमें अर्जुनका चरित्र है। इन चरित्रोंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेपर यह भलिभांति स्पष्ट हो जाता है कि इन भक्तोंने भारतके आजके प्रचलित भक्ति मार्गका अवलम्बन नहीं किया है। हनुमान 'राम राम' नहीं रटता था और न अर्जुन 'कृष्ण कृष्ण' जपता था।

प्रार्थनाकी दीवारों एवं चक्रोंकी कल्पना भी उस समय नहीं थी। दूसरोंको दक्षिणा देकर जप करा लेनेकी प्रवृत्ति भी उस समय नहीं थी। हनुमान और अर्जुनने स्वयं राम और कृष्णका कहीं जप किया हो, ऐसा भी उल्लेख नहीं मिलता। भक्तिमार्गियोंके आधुनिक किसी भी प्रकार या साधनका उपयोग इन्होंने नहीं किया था। इस बातका एक भी प्रमाण न रामायणमें है और न महाभारतमें है। तब फिर इन भक्तोंने किस मार्गका अवलम्बन किया?

इन भक्तोंने क्या किया?

यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि इन प्रसिद्ध भक्तों (हनुमान और अर्जुन) ने क्या किया? आजके भक्तिमार्गी जो कुछ करते हुए दिखाई देते हैं वैसा इन्होंने कुछ भी नहीं किया। तो फिर इन्होंने क्या किया?

दुष्ट रावणके साम्राज्यका विनाशकर भारतवर्षको स्वतंत्र करनेकी योजना ऋषियोंने श्री रामचन्द्रके जन्मसे पूर्व ही बना ली थी और इस योजनाको पूर्ण करनेका उत्तरदायित्व श्री रामचन्द्रपर डाला गया था। इस योजनामें भक्त हनुमान अपना जीवन समर्पित करके अत्यन्त तत्परता और दक्षताके साथ जो भी काम दिया जाता था उसे पूरा निभाता था। शत्रुके साम्राज्यका विनाश करके देशको मुक्त करानेका काम श्री रामचन्द्रने अपने ऊपर लिया था। रामको इस उद्देश्य पूर्तिके निमित्त हनुमान् ने अपना जीवनसर्वस्व प्रणपर लगा दिया था।

ऋषियोंद्वारा प्रारम्भ किये गये एवं रामद्वारा अपने ऊपर लिये गये राष्ट्रोद्धारके कार्यमें हनुमान्‌ने अपना जीवन अर्पण कर दिया और बदलेमें कुछ प्राप्त करनेकी जरा भी इच्छा न रखकर अपना तन, मन, धन सब कुछ लगाकर उसने वह कार्य पूर्ण किया। अपने सुखकी पर्वा न करते हुए राष्ट्र-कार्यमें हनुमान् ने अपना जीवन अर्पण किया। यह है हनुमानकी भक्तिका स्वरूप।

अर्जुनने जिस भक्तिमार्गका अवलम्बन किया वह भी इसी प्रकारका है। भगवान कृष्णने भारतमें जो आसुरी वृत्तिके राजा थे उनका पराभव करके भारतको दैवी राज्य-शासनके अन्तर्गत लानेकी योजना तैयार की। इस योजनामें अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देनेवाला तथा उसे सफल एवं सुफल करनेवाला था अर्जुन। इस अर्जुनका भक्तिमार्ग भी यह इस प्रकारका है।

हनुमान् और अर्जुनने नामका जप करनेमें कभी भी अपना समय नष्ट नहीं किया। इस बातके साक्षी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत हैं। अर्जुनने श्रीकृष्णका नाम जपनेमें तथा हनुमानने श्रीरामका नाम जपनेमें यदि समय बिताया होता तो निश्चय ही यह बात उन विभूतियोंको अच्छी न लगती।

भक्तिका जो प्रकार आज प्रचलित है वह प्रकार श्री रामचन्द्र एवं श्रीकृष्णको कभी भी अच्छा नहीं लगता। क्योंकि आजके समान निष्क्रिय भक्त यदि उस समय होते तो उनकी राष्ट्रोद्धारकी योजनायें कौन सफल बना पाता? और यदि ये योजनायें पूरी न हुई होती तो इन अवतारी पुरुषों का आज इतना सन्मान भी कैसे होता?

इन दोनों भक्तोंने राष्ट्रोद्धारके कार्यके लिये अपना जीवन पूर्णतः समर्पित कर दिया। यही उनकी भक्तिका विशुद्ध स्वरूप था। आज जिस प्रकारको भक्ति कहा जाता है उस प्रकार का अवलम्बन उन्होंने नहीं किया था। पांच हजार वर्ष पूर्वके एवं आजके भक्तिमार्गमें यह इतना अन्तर हो गया है। यही कारण है कि प्राचीन भक्त अपने राष्ट्रकी उन्नति कर सके एवं आजके भक्त राष्ट्रकी उन्नतिका विचार भी नहीं करते। तत्कालीन भक्तिमार्गका कार्यक्रम सार्वजनिक हितके लिये हुआ करता था और आजके भक्तिमार्गके सामने ऐसा कोई उद्देश्य ही नहीं है।

भक्ति का अर्थ

' भज् सेवायाम् ' ' भज् का अर्थ है सेवा करना ' जनतारूपी जनार्दनकी सेवा करनेका ही अर्थ है ईश्वरकी भक्ति करना। विश्वरूप परमेश्वरका स्वरूप है। यह ईश्वर प्रत्यक्षतः हमारे सामने और चारों ओर विद्यमान है। इसी की सेवा करनी चाहिये और इसीकी सेवाके लिये अर्थात् आजकी भाषामें सार्वजनिक हितके लिये अपने जीवनको समर्पित कर देना ही सच्ची भक्ति है और यही वास्तविक भक्तिमार्ग है। इसी भक्तिमार्गका अवलम्बन हनुमानने रामावतारमें तथा अर्जुनने कृष्णावतारमें किया और अपना जीवन सार्थक करके बताया। यह था वह भक्तिमार्ग जिस पर लोग बुद्धपूर्वकालमें अपने जीवनको चलाते थे।

बुद्धके समयसे स्वर्गके सुगम मार्गकी स्पर्धासी शुरू हो गई और इस सुगम मार्गके अन्वेषणकी स्पर्धामेंसे आजके भक्तिमार्गका अर्थात् निष्क्रियताका भक्तिमार्ग आविर्भूत हुआ। हम जिसकी भक्ति करते हैं उसका स्वरूप विश्व है। इस प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले विश्वरूपकी सेवा करना हमारा प्रथम धर्म है और यही सच्चा भक्तिमार्ग है। आज हम इस मार्गको बिल्कुल भुला चुके हैं। यही कारण है कि आज के भक्तोंके द्वारा जनहितका सार्वजनिक कार्य थोडा भी नहीं हो पाता।

सनातन का क्या अर्थ है ?

' सनातन ' शब्द के अर्थपर हमें विचार करना चाहिये। ' सन् संभक्तौ ' ' सन् ' का अर्थ है अच्छी प्रकारसे भक्ति करना। उत्तम भक्तिका अभिप्राय है विश्वरूप देवताकी उत्तम सेवा। ' सना अर्थात् सेवा ' और यह सेवा विश्वरूप ईश्वर-की करनी है। ' सनातन ' अर्थात् जनता-हितके लिये की जानेवाली सेवाका विस्तार अथवा प्रसार। इस प्रकारकी सेवा करनेवाले स्वयंसेवकोंकी संख्या बढानी चाहिये तथा ऐसे स्वयंसेवक जितने अधिक होंगे उतने अधिक बढाने चाहिये। सार्वजनिक सेवा करनेकी वृत्ति बढानी चाहिये। जो इस सार्वजनिक सेवावृत्तिको बढाता है वही सनातन धर्म है।

इस प्रकार विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक सेवावृत्ति धारण करनेवाले हनुमान् एवं अर्जुन जैसे भक्तोंका निर्माण करनेका गुण सनातन धर्ममें था। किन्तु बुद्धोत्तर कालमें जबसे वैयक्तिक नामपर चलनेवाले पन्थोंका निर्माण हुआ और सुगम मार्गोंकी स्पर्धा आरम्भ हुई तबसे सार्वजनिक सेवाकी वृत्ति कम हो गई तथा वैयक्तिक उन्नति करके, स्वयंके लिये निर्वाण प्राप्त करके वैयक्तिक आनन्द प्राप्त कर लेनेकी वृत्ति बलवती होती गई। भक्तिका जो सार्वजनिक स्वरूप था वह नष्ट होकर उसका केवल वैयक्तिक स्वरूप रह गया। सार्वजनिक

दृष्टिसे यह बहुत बड़ा पतन हुआ है जिसके फल भारतको आज भी भोगने पड़ रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्पष्ट कहा है कि—

स्वकर्मणा तं अभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः।

स्वकर्मद्वारा इस विश्वरूप देवकी पूजा करनेपर मनुष्य उत्तम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। स्वकर्मद्वारा इस ईश्वरकी पूजा करनी है। स्वकर्मका अर्थ यह है कि हमारे पास जो ज्ञान है उसके द्वारा इस विश्वरूपकी सेवा की जावे अर्थात् ज्ञानका प्रसार करके सेवा की जावे। जो शूर हो वह अपने शौर्यसे जनसेवा करे। गुण्डोंके उपद्रवोंका शमन करके समाजकी रक्षा करे। जो व्यापारी वृत्तिका हो वह कृषि द्वारा विपुल धान्य उत्पन्न करे, गोरक्षण करे तथा दक्षतासे व्यापार करके समाजकी सेवा करे। जो कारीगर हो वह अपनी कुशल कारीगिरीसे समाजकी सेवा करे। स्वकर्मसे जो पूजा की जाती है वह इस प्रकार की जाती है। स्कूलके शिक्षक द्वारा छात्रोंको अच्छी प्रकारसे शिक्षा देनेका ही अर्थ है स्वकर्मद्वारा ईश्वरकी सेवा।

अर्जुनने अपनी शूरता द्वारा जनताकी सेवा की और तत्कालीन आततायी गुण्डोंका शमन करके जनता जनार्दन की प्रसन्नता सम्पादन की। यही हनुमानने भी किया। यह था प्राचीन कालका भक्तिमार्ग।

यह भक्तिमार्ग, यह ईश्वरसेवाका मार्ग जीवित समाजमें ही हो सकता है। आज यहाँके प्रचलित भक्तिमार्गमें मुख्यरूपसे जो बात दिखाई पड़ती है वह यह है कि इसके द्वारा मनुष्यको संसारकी स्पर्धाओंसे पराङ्मुख करके एक प्रकारकी निष्क्रियतामें रहनेवाली शान्तिको प्राप्त करा दिया जाय। प्राचीन कालमें ऐसा नहीं था। इस विषयमें अर्जुनकाही उदाहरण देखने योग्य है।

अर्जुन युद्धसे निवृत्त हो रहा था और सचमुच हो भी गया था। जनताके संघर्ष कार्यका परित्याग करके, वनमें जाकर और कन्द मूल फलोंको खाकर 'हरि हरि' का जप करनेका उसका निश्चय हो ही गया था। किन्तु भगवान श्रीकृष्णने इस अध:पतनसे उसकी रक्षा कर ली और भयङ्कर घनघोर युद्धमें उसे लाकर खड़ा कर दिया और उस संहारक युद्धका उसे मुख्य नेता बना दिया। इस प्रकार स्वकर्मद्वारा परमेश्वरकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण संसारके सामने उपस्थित कर दिया और यह बता दिया कि इस मार्गका अवलम्बन करनेका सच्चा आदर्श क्या है।

अर्जुनने जिस भक्तिमार्गका अवलम्बन किया था वह यह था। श्रीकृष्णकी महान् योजनाका मूल उद्देश्य यह था कि भारतवर्ष मानव समाजके शत्रुओंसे मुक्त होकर एक धार्मिक राज्यमें स्वानन्द और स्वराज्यके सुखका उपभोग करे। अपनी इस योजनाको सफल बनानेके लिये युद्ध करके शत्रुओंका पराभव करना नितान्त आवश्यक था। इस कार्यको सफल बनानेके लिये उन्हें योग्य भक्तोंकी आवश्यकता थी और इसके लिये सर्वथा उपयुक्त अर्जुन जैसा भक्त उन्हें प्राप्त हो गया था। यही कारण था कि अर्जुनने युद्ध किया, दुष्टोंका विनाश किया और अपने आराध्यकी योजना पूर्ण की।

दुष्टोंका नाश, सज्जनोंकी रक्षा और मानवधर्मकी पुनः व्यवस्थित रूपेण स्थापना करना ईश्वरके कार्य हैं। इन तीनों कार्योंको पूर्ण करनेके लिये उसे भक्तोंकी आवश्यकता रहती है। भक्तोंके द्वारा ही वह इन कार्योंको करवा लेता है और इन ईश्वरीय कार्योंको करके ही भक्तोंका जीवन सफल होता है। जो भक्त इन त्रिविध कार्योंके लिये अपना जीवन समर्पित करेंगे वे कृतार्थ हो जायेंगे। भक्तोंका कर्तव्य है कि वे दुष्टोंका विनाश करें, सज्जनोंकी रक्षा करें और धर्मकी अस्तव्यस्त स्थितिको पुनः व्यवस्थित बना दें। इन्हीं कार्योंसे ईश्वर सचमुच प्रसन्न हो सकता है।

किन्तु आधुनिक भक्तोंने इस कार्यकी बिल्कुल उपेक्षा ही कर दी है। आज जनतामें जो भक्तगाथायें प्रचलित हैं उन्हें देखनेपर विदित होता है कि भक्तोंको सार्वजनिक हितके कार्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अपितु इसके विपरीत दिखाई यह देता है कि भगवान् ही कहींपर भक्तोंका आटा पीस रहा है, कहीं कपड़े धो रहा है या और कोई कष्ट उठा रहा है।

अर्जुनके रथके घोड़े भगवान्ने ही हांके थे और वहाँ भी भगवान्ने ही कष्ट उठाया था। किन्तु वह युद्धभूमि थी और उसके पीछे राष्ट्रोद्धार योजना थी। भगवान्को अपनी इस योजनाको पूर्ण करनेके लिये भक्तका सारथी बनना बहुत आवश्यक था। उस समय गुण्डोंने अपना दृढ संगठन बना-

लिया था और सज्जनोंको पीडा देनेका उनका कार्य बढता ही जा रहा था। गुण्डोंके इस संगठनका विध्वंस करना राष्ट्र-हितके लिये परम आवश्यक था। इस प्रकारके इस राष्ट्रहित साधक युद्धको सफल बनानेके लिये अर्जुनको तैयार करना और इस राष्ट्रीय योजनाको पूर्ण करना ही भगवानका ध्येय था। भक्त अर्जुन अपने भगवानके इस कार्यको पूर्ण करनेवाला था। इसीलिये अर्जुनके लिये अनुकूल परिस्थितिका निर्माण कर देना भी भगवानका कर्तव्य ही था। सार्वजनिक हितके कार्यको करनेवाले भक्तके लिये एतादृश अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होती ही है। किन्तु घरका आटा पीसना, रोटियाँ बनाना आदि जो कार्य भक्त गाथाओंमें इन आज कलके भक्तोंने भगवान् द्वारा करवाये हैं वे सब निष्क्रियताको बढानेवाले ही कार्य हैं। इसी लिये आज वे चिन्त्य हैं।

एक भक्त जो राष्ट्र हितके लिये अपने जीवनका समर्पण करता है उसे सहयोग देना एक भिन्न स्थिति है और जो केवल नामकी रट लगा रहा है उसके लिये आटा पीसना आदि कार्य करना एक भिन्न अवस्था है। राष्ट्रोद्धारकी दृष्टिसे यदि इसका विचार किया जाय तो प्राचीन और अर्वाचीन भक्तिमार्गमें कितना महदन्तर है, यह विदित हो जाएगा।

नाम माहात्म्यको बढावा देनेके लिये इस प्रकारकी निरुपयोगी और निस्सार कथायें आधुनिक युगमें घड़ ली गई हैं। सरल मार्गका अन्वेषण करनेकी स्पर्धामें इन उपायों द्वारा जनतामें कुछ विश्वास या आस्था भले ही पैदा हो गई हो; किन्तु सम्पूर्ण स्थितिका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर प्रत्येकके ध्यानमें यह बात अच्छी प्रकार आजाएगी कि इन भक्तिमार्गोंसे निःसंशय समाजका अत्यधिक पतन हुवा है।

नामजपकी एक विशिष्ट शैली द्वारा मानवी उन्नतिका महान कार्य भी किस प्रकार सम्भव है, यह बात हम अगले लेखमें देखेंगे।

अनुवादक— महेशचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न

वागाम्भृणीय सूक्त

(ऋ० मं० १०, सूक्त १२५। ऋषि-वाक्, देवता-वाक्, छन्दस्-त्रिष्टुप्।)

[अनुवादक— श्री पाण्डेय कपिलदेवनारायणसिंह]

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

मैंने ही तो है जन्म दिया स्वपिता को अंतिम यह, किन्तु अपूर्व बात कहती हूँ।
है जलधिवास मेरा, घट घटमें हूँ मैं दूरास्थित दिवको भी छू सकती हूँ ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥

कम्पायमान करती इस सकल भुवनको घर रूप हवाका मैं ही तो बहती हूँ।
मैं हूँ द्यावा-पृथ्वीसे न्यारी न्यारी मैं अपनी महिमासे इतनी महती हूँ ॥ ८ ॥

वेदवाणीका वेदांक

(समालोचना)

(संपादक- श्री. पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु। व्यवस्थापक- श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक। वार्षिक मूल्य ४॥) रु.। वेदवाणी कार्यालय, अजमगढ पैलेस, बनारस ६)

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट (अमृतसर) से प्रकाशित होनेवाली यह मासिक पत्रिका है और इसका यह वेदांक है। इसके संपादक पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु हैं, इतना कहने मात्रसे इस मासिक पत्रिकाकी और इस विशेष वेदांककी पर्याप्त प्रशंसा हो सकती है। पं० ब्रह्मदत्तजी तथा पं० युधिष्ठिरजी ये दोनों एक बडे निष्ठवान् और स्वाध्यायशील विद्वान हैं। इस समय आर्यसमाजमें जितने विद्वान हैं उनमें जो उच्च कोटिके विद्वान हैं, उनमें विशेष आदरके योग्य ये दो विद्वान हैं। ऐसे उच्चतम कोटिके दो विद्वान इस मासिक पत्रिकाके लिये मिले हैं, यह श्री रामलाल कपूर ट्रस्टका महाभाग्य है। निःसन्देह ये दो विद्वान इस ट्रस्टका उत्तमसे उत्तम उपयोग कर सकते हैं।

पं० ब्रह्मदत्तजीमें विद्या है, परिश्रम करनेकी शक्ति है, अथक विद्याव्यासंग करते रहनेकी तपस्या है, अपूर्व स्मरण शक्ति है, अदम्य उत्साह है, श्री स्वामी दयानंद सरस्वतीके ऋषि होनेमें इनकी असीम श्रद्धा है, स्वामीजीके भाष्यमें अपूर्व वैदिकधर्म मार्गका दर्शन किया गया है, यह अटूट विश्वास इनके हृदयमें शाश्वत रहा है और विद्याके व्यासंगसे वह बढता जाता है, इस स्वामीभाष्यको सुबोध बनानेसे मानवी जनताका सच्चा कल्याण हो सकता है, यह इनकी अकृत्रिम मनोभावना है। इस रीतिसे देखा जाय तो हम निःसंकोच कह सकते हैं कि पं० ब्रह्मदत्तजीके संपादकत्वमें प्रकाशित होनेवाला वेदवाणी मासिक पत्र वेदका धर्म बताने वाला होनेमें किसीको संदेह नहीं होना चाहिये।

हमारा इनका परिचय गत चालीस वर्षोंका है और जबसे परिचय हुआ है, तबसे इनकी धर्मश्रद्धाके विषयमें हमारा आदर बढता ही जाता है। परन्तु इनके अन्दर एक दोष भी है। जिस तरह चन्दनके वृक्षपर सांप रहते हैं, रत्नाकर सागरमें हिंसक जीव रहते हैं, उसी तरह अत्यंत अग्रगण्य विद्वानमें दुराग्रह भी रहता है। वही इनके अन्दर है और वह आयुके साथ बढ भी रहा है। जबसे हमारा इनका परिचय हुआ, तभीसे हमने यह दोष इनके अन्दर देखा है।

ये पूर्ण विश्वाससे मानते हैं कि, बहुतसे अन्य विद्वान, ऋषि दयानन्दजीके मन्तव्योंका नाश कर रहे हैं और इस कारण आर्यसमाजको क्षति पहुंच रही है। इनके सामने एक भी विद्वान ऐसा नहीं है, कि जो इनके मतसे इस दोषके कारण दण्डनीय समझा जाने योग्य न हो। इस कारण ये प्रायः सभी विद्वानोंमें दोष देखते हैं और ये सब विद्वान जो दोष कर रहे हैं, उनको दूर करके आर्य समाजका बचाव करनेका सब भार अपने ऊपर है ऐसा भी इनका मत हुआ है।

इस कारण ये जहाँ पंहुचते हैं, वहाँ अनेक झगडे खडे होते हैं और वे प्रायः निष्कारण ही होते हैं। जहाँ झगडेकी संभावना नहीं होती, वहां भी इनके जानेसे झगडे खडे होते हैं!! जिस रस्सीको ये देखते हैं, वहां रस्सीके स्थानपर सांपकी कल्पना करके ये उस रस्सीको इतने वेगसे और इतने जोरसे पीटने लगते हैं कि उस निर्जीव रस्सीसे ही अनेक जीवित विषैले सांप खडे होकर फूत्कार करने लगते हैं!! आजतक इनका जीवन चरित्र देखा जाय तो ऐसी निर्जीव रस्सीसे अनंत सजीव विषारी सांप निर्माण हुए हैं, ऐसा ही दिखाई देगा। हालमें 'ब्रह्मदत्त-विश्वश्रवा' यह झगडा हुआ था। आजतक ऐसे अनेक झगडे हुए हैं। इनकी जडमें देखा जायगा तो यह साफ मालूम होगा, कि वास्तवमें झगडा होनेका कोई कारण वहां नहीं था। यदि पं० ब्रह्मदत्तजी शान्तिसे काम लेते, तो विवाद उत्पन्न ही नहीं होता। परन्तु इस प्रकाण्ड विद्वानमें यह दोष है, और इस कारण जिस आर्य समाजको ये सुरक्षित करनेकी इच्छा कर रहे हैं, उसीको शतधा विदीर्ण हुआ ये ही देख रहे हैं!!! यदि यह दोष इनके स्वभावमें न होता, तो हमें इसमें कोई

संदेह नहीं है, कि इनके कारण आर्यसमाज सुसंघटित होता और वेदधर्म सुपल्लवित होकर भारतको नव जीवन देता। पर अब ऐसा बननेकी संभावना नहीं दीखती।

पं० ब्रह्मदत्तजीकी विद्या और श्रद्धाके विषयमें हमारे मन में बड़ा ही आदर है, वह कभी कम नहीं हो सकता। पर इस शीतलता निर्माण करनेमें समर्थ चन्दनके वृक्षपर ऐसे विषैले सांप भी हैं, कि जिस कारण इस चन्दनके वृक्षसे शीतलता निर्माण नहीं हो सकती, परंतु विषकी गर्मी ही फैल सकती है, यह देखकर हमारा मन अत्यन्त दुःखका अनुभव कर रहा है; पर किया क्या जाय? भवितव्यता ऐसी ही है।

जिस समय पं० ब्रह्मदत्तजी और पं० युधिष्ठिरजी अजमेर गये और वैदिक यंत्रालयके वेदादिमुद्रणमें लगे, ऐसा हमने सुना, उस समय हमने यही समझा कि अब अजमेरका वैदिक यंत्रालय सच्चा वैदिक यंत्रालय बनेगा। पर वहां भी ये दो विद्वान टिक नहीं सके और कार्य कर नहीं सके।

वैदिक यंत्रालयके पास धन है, प्रेस है और वह बढाया भी जा सकता है। वैदिक मुद्रणका कार्य इतना बडा है कि ऐसे दस प्रेस चलते रहें, तो भी वह कार्य समाप्त नहीं होगा। पर वैदिक यंत्रालयमें तो कोई ऐसा पुरुष नहीं है कि, जिसको वेद मुद्रणके कार्यका पं० ब्रह्मदत्तजीके समान ज्ञान हो। इसलिये वह मुद्रणालय तो एक साधारण मुद्रणालय बन गया है। पं० ब्रह्मदत्तजीके आधीन वहांका वेद मुद्रणका कार्य स्थायी रूपसे रहता, तो निःसंदेह वहां शुद्ध मुद्रण तो अवश्य हो जाता। पर समाजका दुर्दैव वहां भी कार्य कर ही रहा है।

भारतका विभाजन होनेके पश्चात् पं० ब्रह्मदत्तजीको लाहोर छोडना पडा और वहांसे ये काशीमें आकर रहे हैं। लाहौरमें इनके ग्रंथोंकी बडी हानि हुई। यह तो दुःखदायी घटना सबको विदित ही है। काशीमें निवास होनेपर आपने 'वेद वाणी' मासिक शुरू किया और अनेक उपयुक्त कार्य शुरू किये हैं, जिनके लिये आर्य जनता इनके विषयमें निःसन्देह कृतज्ञता प्रकट करेगी। काशी अनेक शतकोंसे विद्याका स्थान बनी है, वहां इनका रहना विद्या प्रचारकी दृष्टिसे सहायक होगा, इसमें किसीको संदेह नहीं होना चाहिये।

इस 'वेदांक' में २४ विद्वानोंके २४ लेख हैं। एकसे एक बढकर उत्तम लेख हैं, इसलिये संपादक प्रशंसाके पात्र हैं। श्री स्वामीजीको भारतीय कार्यक्षेत्रमें आकर तथा आर्यसमाजको स्थापन करके करीब ८० वर्ष हो गये हैं।

"वेदोंका पढना पढाना सब आर्योंका परम धर्म है।" ऐसा आर्य समाजके दस नियमोंमें एक नियम है। इस तरह ८० वर्षोंमें आर्य लोग वेदका पठना पढाना करते, अथवा सब आर्योंके पढने योग्य वेदोंके अनुवाद प्रकाशित हो जाते, तो इतने समयमें वैदिक धर्मका आचरण भारत भरमें हो जाता और भारतकी कायापलट निःसंदेह हो जाती। पर ८० वर्षतक इस नियमका डंका बजनेपर भी अबतक वेदके विशेषांकोंमें—

१५ श्री सुधीरकुमारजी 'वेदमें इतिहास नहीं,'
१७ पं जयदेव शर्माजीका 'विदपलाका तथा-कथित इतिहास,'
२२ प्रा. विष्णु दयालजीका 'क्या वेद हमारे लिये कोई अर्थ रखते हैं?'

ऐसे लेखोंकी आवश्यकता संपादकों और लेखकोंको प्रतीत होती है!! इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि 'वेदका पठन पाठन करना यह जो आर्योंका परम धर्म था' उसका पालन बिलकुल नहीं हुआ। इसका दोष आर्य जनतापर नहीं है, पर जो आर्य समाजके धुरीण पंडित हैं, विशेषतः पं० ब्रह्मदत्तजी जैसे आर्यसमाजके विद्वन्मुकुटमणि हैं, उनपर यह सब दोष आता है। इन विद्वानोंने जनताको अध्ययन करने योग्य वेदके ग्रंथ दिये नहीं। यदि ये विद्वान ग्रंथोंकी निर्मिति करते, तो इनपर दोष न आता। पर इनमें विद्या होते हुए भी और स्वामीभाष्य समझनेकी बुद्धि इनमें होते हुए भी, इन्होंने झगडोंको बढानेके सिवा और विशेष दीखने योग्य कुछ भी कार्य नहीं किया।

पं० ब्रह्मदत्तजीको पूर्ण विद्वान होकर आर्यसमाजके सन्मुख आकर आज ४० वर्ष व्यतीत हुए। ४० वर्षोंके दिन १४६०० होते हैं। चारोंवेदोंके मंत्र करीब करीब २०।२२ हजार हैं। पुनरुक्त मंत्र छोडकर १६०० से अधिक मंत्र चारों वेदोंमें मिलकर नहीं है। पं० ब्रह्मदत्तजी स्वयं ऋषि दयानंदके भाष्यको रहस्यके साथ समझनेका दावा करते हैं। ऐसे विद्वान प्रतिदिन एक मंत्रका भी भावार्थ लिखते, तो वह अर्थ जनता पढती और ४० वर्षोंमें चारों

वेदोंके ज्ञाता सहस्त्रों नहीं तो, सेकडों तो हो ही जाते। और विशेषांकोंमें ' इतिहास वेदमें है वा नहीं ' ऐसे क्षुद्र विषयोंपर लेख लिखनेकी कोई आवश्यकता न रहती।

ऋषि दयानन्दजीके वेदरहस्यको तो पं० ब्रह्मदत्तजी कुमार अवस्थासे ही जानते थे। इसीलिये जब वे काशीके पंडितोंके पास सीखते थे, उस समय अपने गुरुजनोंके विचारोंका खंडन और स्वामीजीके विचारोंका मण्डन वे करते थे। शिष्य अवस्थामें इनकी बुद्धिकी प्रतिभा ऐसी विलक्षण प्रभावशाली थी। इसका पता हमें उनके मुखारविन्दसे ही लगा था। और वे स्वप्नमें भी असत्य बोलते नहीं, इसलिये इसके सत्य होनेमें हमें बिलकुल संदेह नहीं है।

जो विद्वान कुमारावस्थामें भी इतना वेद रहस्यका ज्ञाता हो, वह प्रबुद्ध होकर प्रकाण्ड पंडित होनेके बाद ४० वर्षोंमें चारों वेदोंका अनुवाद तो दूर ही रहा, पर क्रमपूर्वक दस सूक्तोंका भी रहस्य समेत भाषानुवाद स्वयं करते नहीं और अन्य पंडितोंके प्रयत्नोंका खण्डनखण्डखाद्याखसे केवल खंडन ही खंडन करते रहते हैं। इसका तत्त्व क्या है?

इसलिये हमने कहा कि आर्यसमाजने सामूहिक रूपसे स्वाध्याय नहीं किया इसका संपूर्ण दोष पं० ब्रह्मदत्तजीपर है। क्योंकि वे ऋषि दयानंदजीके भाष्यको जैसा जानना चाहिये वैसा जानते हैं, ऋषिका रहस्य समझते हैं, ऋषि भाष्य किस रीतिसे समझना चाहिये इसकी विधि उनको ज्ञात है। अन्य पंडित इनके समान विद्यावान नहीं हैं और न अन्य कोई पंडित ऐसा दावा करनेमें समर्थ हैं।

इसी वेदांकमें " वेदार्थका महान पुनरुद्धारक ऋषि दयानंद ' यह १५।१६ पृष्ठोंका अतिविस्तृत लेख पं० ब्रह्मदत्तजीकी प्रगाढ विद्वत्ताका दर्शक है। इसी लेखसे सिद्ध होता है कि वेदके रहस्यका पूर्ण ज्ञान इनको है। यदि ऐसा है, तो ऋग्वेदके प्रारंभसे प्रत्येक मंत्रके तीन अर्थ अथवा जितने हो सकते हैं उतने अर्थ भाषामें लिखकर ये पं० ब्रह्मदत्तजी आर्य जनोंके हितके लिये क्यों प्रकाशित नहीं करते? इन १५ पृष्ठोंके कलेवरमें कमसे कम १५।२० मंत्रोंके रहस्यार्थ तो प्रकाशित हो जाते! पर इस संपूर्ण सवासौ पृष्ठोंके अंकमें दस वेदमंत्रोंका भी रहस्य-अर्थ पाठकोंके पास नहीं पहुंचा पाया है।

२

इस लेखमें पं० ब्रह्मदत्तजीने इन १५ पृष्ठोंमें अपनी बडी विद्वत्ता दर्शायी है। इस विद्वत्ताकी प्रशंसा हर कोई करेगा और हम भी करते हैं। इस लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकके मन और बुद्धिपर ग्रंथोंके वचनोंका भार अत्यधिक पडा हुआ है और उस कारण इनकी मन और बुद्धि भाराक्रान्त हुई है। इतना भार जिस बुद्धिपर रहेगा, उस बुद्धिका प्रशंसा वचन संग्रहकी धारणा करनेमात्रके लिये अवश्य होगी। वैसी प्रशंसा करनेके लिये इनकी बुद्धि पात्र है। पर इस तरह की भाराक्रान्त बुद्धि वचनोंका भार ही बता सकती है, मन्त्रका रहस्य नहीं।

पं० ब्रह्मदत्तजीके पास पर्याप्त ज्ञान-वेदका रहस्यार्थ भाषामें लिखनेके लिये जितना चाहिये उतना — है। इस विषयमें हमें संदेह नहीं है। इसलिये अब हमारी उनके पास करद्वय जोडकर यह प्रार्थना है कि, वे इस वचन संग्रहके भारको कुछ कालके लिये दूर करके रख दें और ऋषिदयानंदजीको जो अर्थ वेद मंत्रोंका अभीष्ट था, वह शुद्ध भाषामें लिखकर प्रकाशित करें। यदि उनकी इच्छा है तो वे संस्कृतमें भी प्रकाशित करें और साथ साथ भाषामें भी प्रकाशित करें।

इस १५ पृष्ठोंके लेखमें प्राचीन अर्वाचीन, विदेशी और स्वदेशी अनेक विद्वान भाष्यकारोंके भाष्य, टीका, तथा अनुवाद अशुद्ध हैं, कई भाष्योंके कुछ अंश अनुकूल भी हैं, पर वह अनुकूलता आंशिक है। मुख्यतः जिस तरह ऋषि दयानन्दकृत वेदभाष्यमें वेदका रहस्य खोलकर बताया है, वैसा किसीने नहीं बताया। यह सब जैसा पंडित ब्रह्मदत्तजी लिखते हैं वैसा ही वह सत्य माना जा सकता है। पर इतना १५ पृष्ठोंका लेख पढनेपर भी २।४ मंत्रोंका रहस्य समझमें नहीं आता। इसलिये हमारी पं० ब्रह्मदत्तजीसे प्रार्थना है कि वे ऋषिकृत वेदभाष्य को रहस्य समेत क्रमपूर्वक प्रसिद्ध करें। इसमें प्रत्येक मंत्रके परमात्मा परक, जीवात्मा परक, भौतिक पदार्थोंके संबंधके, और जितने अन्य अर्थ हो सकते हैं, उतने सब प्रकाशित करते जांय।

इस लेखके अन्तमें स्वामी भाष्यकी १२ विशेषताएं विद्वान पं० ब्रह्मदत्तजीने दी हैं, इनमें १० वी विशेषता यह है- (१०) " आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक

(आधियाज्ञिक) तीनों प्रक्रियाओंमें वेदमंत्रोंके अर्थ होते हैं ऐसा स्वामीजीने माना है। " इससे स्पष्ट हो जाता है कि कमसे कम वेदमंत्रके तीन अर्थ तो होते ही होंगे। और उनका पता पं० ब्रह्मदत्तजीको है। इसलिये इन अर्थोंको प्रकाशित करनेका कार्य इनको ही सबसे प्रथम करना चाहिये।

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिकका अर्थ क्या है?

पं० ब्रह्मदत्तजी अपने लेखमें पञ्चम विशेषता लिखते हुए ऐसा लिखते हैं- (५) आचार्य दयानन्दका सिद्धान्त है कि जहां उपासनाका विषय है, वहां अग्नि आदि शब्दोंसे ईश्वरका अभिप्राय है। अन्यथा इन्हीं शब्दोंसे भौतिक पदार्थोंका ग्रहण किया जा सकता है।' ठीक है। इतना निश्चित हो जानेपर तो कोई संदेह ही नहीं है। पर यहां एक शंका रहती है वह यह कि दशम विशेषतामें आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ये अर्थके तीन क्षेत्र बताये हैं और कोष्ठमें ' आधियाज्ञिक ' शब्द भी रखा है। यह आधियाज्ञिक किसका भला अर्थ है? और उक्त तीनोंके अर्थ क्या हैं? हमें ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें जो अर्थ दीखते हैं वे ये हैं- आध्यात्मिकका अर्थ ऐसा है-

आध्यात्मिकका अर्थ

अध्यात्मं मनः। केन उ. ३०

अध्यात्मं मुख्यः प्राणः। छां. १।५।३

,, वाक् । छां. १।७।१

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः। छां. ४।३।३

,, इदमेव मूर्तं यदन्यत्प्राणात्।
अथामूर्तं प्राणश्च। बृ. २।३।४-५

,, यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरः⋯आत्मा।
बृ. ३।७।१६

मनो ब्रह्मेति उपासीत इति अध्यात्मम्।
छां. ३।१८।१

वाक्⋯प्राणः⋯चक्षुः⋯श्रोत्रं इत्यध्यात्मम्।
छां. ३।१८।२

प्राण⋯इत्यध्यात्मम्। बृ. १।५।२१

अथाध्यात्मं-अधरा हनुः⋯उत्तरा हनुः। तै. १।३।४

अथाध्यात्मम् प्राणो ऽपानो व्यान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा। तै. १।७।१

इस तरह ' आध्यात्मिक ' अर्थमें जीवात्माके शरीरके अन्दर आत्मासे शरीरतक जितनी शक्तियां हैं, उनका संग्रह होता है। आत्मा-बुद्धि-मन-ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ-शरीर यह सब अध्यात्म है। अध्यात्म शब्दसे परमेश्वरका ग्रहण होता है ऐसा वचन हमने कहीं भी नहीं देखा है।

आधिदैवतका अर्थ

अब आधिदैवतका अर्थ यह है—

वायुर्वाव संवर्गः⋯अग्निः⋯सूर्यः⋯चन्द्रः⋯
वायुमप्येति।
आपः⋯वायुमेवापियन्ति⋯इत्यधिदैवतम्।
छां. ४।३।२

अथाधिदैवतं आकाशो ब्रह्मेति। अग्निः⋯वायुः⋯
आदित्यः दिशः। छां. ३।१८।१-२

वायुश्चान्तरिक्षं च। बृ. २।३।३

अथाधिदैवतं—
अग्निः⋯आदित्यः⋯चन्द्रमाः। बृ. १।५।२२

इस तरह आधिदैवतका अर्थ अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ हैं। अब अधिभूतका अर्थ देखिये—

यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तरः यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतानि यमयति एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः इत्यधिभूतम्।
बृ. ३।७।१५

' जो सब भूतोंमें रहता है, सब भूतोंसे पृथक् है, सब भूतोंका जो नियमन करता है वह तेरा अन्तर्यामी आत्मा है।' यहां सब भूतोंके अन्तर्यामी रहनेवाला आत्मा कहा है। तैत्तिरीयोपनिषद्में इस तरह इसका वर्णन है-

पृथिवी अन्तरिक्षं द्यौः दिशः अवान्तरदिशः।
अग्निः वायुः आदित्यः चन्द्रमाः नक्षत्राणि।
आपः ओषधयो वनस्पतयः। आकाश आत्मा
इत्यधिभूतम्।

यहां पृथिव्यादि पदार्थोंके साथ संचालक आत्माका नाम है। इतना ही निर्देश आत्माका है। यदि यह परमेश्वर माना जाय तो वह ' अधिभूत ' में आया है ' अध्यात्म '

में नहीं। अध्यात्ममें केवल शरीरके अन्दर आनेवाले आत्मा-बुद्धि-मन-इंद्रिय-शरीरकी ही गिनती की गई है। इसलिये स्वामीभाष्यमें जो आपने कहा है उसमें आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक ये तीन स्पष्ट अर्थ हैं तो वे अर्थ वेद ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदोंके प्रमाण देकर कृपा करके जनताके हितार्थ प्रकट कीजिये। आपके लिये यह सहज होनेवाली बात है। श्री स्वामी भाष्यमें ऐसे अर्थ दिये हैं-

ऋ० १।१।१- अग्निं परमेश्वरं भौतिकं वा।

(भावार्थमें) ' यहां अग्नि शब्दके दो अर्थ करनेके ये प्रमाण हैं। ' अर्थात् श्री स्वामी भाष्यमें अग्नि पदके दो अर्थ हैं। ऋग्वेदके प्रथम सूक्तमें ' अग्नि ' पदके दो ही अर्थ दिये हैं।

ऋ० १।२५- वायो अनन्तबल सर्वप्राणान्तर्यामिन्नीश्वर तथा ···भौतिको वा।

(भाषामें) परमेश्वर और भौतिक वायु।

इस सूक्तमें आगे एक ही अर्थ ' परमेश्वर ' ही दिया है। न दो अर्थ हैं और ना ही तीन अर्थ हैं।

ऋ० १।३ इस सूक्तमें ' अश्विनौ ' देवताके ' अग्नि जल ' ये अर्थ हैं। ईश्वर अर्थ यहां नहीं है।

ऋ० १।३।४ में " इन्द्र परमेश्वरः सूर्यो वा। " । इन्द्रके दो ही अर्थ हैं

ऋ० १।३।६ में इन्द्रका अर्थ केवल वायु ही किया है।

ऋ० १।३।७ में ' विश्वेदेवा ' का अर्थ ' सर्व विद्वान ' कहा है। यहां ईश्वर वा दूसरा अर्थ नहीं है।

ऋ० १।३।१० में ' सरस्वती ' का अर्थ वाणी है। दूसरा कोई अर्थ नहीं है।

इस तरह ऋग्वेदका स्वामीभाष्य देखनेसे स्पष्ट दीखता है कि कहां प्रत्येक देवता वाचक पदके आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक (आधियाज्ञिक) अर्थ किये हैं ऐसा दीखता नहीं है। कहीं कहीं केवल एक ही अर्थ किया है और कहीं दो। पर तीनोंका पता नहीं हैं। पं० ब्रह्मदत्तजी इसका स्पष्टीकरण करें।

ऋग्वेदके ७ मंडल तक और यजुर्वेदका पूरा स्वामी भाष्य मिलता है। इसका संस्कृत भाष्यका भाग पं० ब्रह्मदत्तजीकी बुद्धिमें आता होगा। पर वह किसी दूसरे पंडितकी समझमें नहीं आता। इसलिये गुरुकुलोंमें भी इसकी पढाई कोई नहीं कर सकता है। फिर दूसरे कालेजों और युनिवार्सिटियों में इसकी पढाई होना तो बडी दूरकी बात है। पं० ब्रह्मदत्तजी ने सब अन्य पंडितोंको कितना भी बुराभला कहा, तो भी इससे स्वामीजीका संस्कृतभाष्य पाठकोंके ध्यानमें आने लगेगा, ऐसा नहीं हो सकता। यदि पं० ब्रह्मदत्तजी संपूर्ण स्वामी-भाष्य समझनेका दावा करते हैं, तो उनका यही मुख्य कर्तव्य होता है कि उस स्वामी-भाष्यको अन्वयानुसार करके प्रत्येक मंत्रके आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक (अधियाज्ञिक) जो भी अर्थ उनकी संमतिसे स्वामीजीने किये हैं, या स्वामीजीकी दृष्टीमें थे ऐसा उनका विचार है, वे सब अर्थ संस्कृतमें तथा भाषामें क्रमपूर्वक छापकर प्रकाशित करें। इसका व्यय कपूर ट्रस्टसे किया जाय अथवा परोपकारिणी सभा, वा वैदिक यंत्रालय, किंवा सब आर्य प्र० सभाएं, या सार्वदेशिक आ० प्र. सभा प्रत्येक अथवा सब मिलकर करें। इसको लेखबद्ध करनेतक पं० ब्रह्मदत्तजी दूसरा कुछ कार्य न करें और इस कार्यके लिये जो लेखकोंकी सहायता चाहिये वह वे लें और इस कार्यको करें और इसके पश्चात् अवशिष्ट वेदोंका भी भाष्य वे कर छोडें।

इस समय भी गुरुकुलोंमें वेद पढाईकी समस्या बडी कठिन हुई है। पढानेवाले अपने मनकी अपनी रीतिसे पढाते हैं। कोई किसी तरह स्वामीजीका पद्धति नहीं, कुछ भी नहीं ! हमारी इच्छा यह है कि वेदका अर्थ निश्चित बन जाय तो हम सबके लिये अच्छा होगा।

जैसा इस लेखमें पं० ब्रह्मदत्तजीने प्रमाण वचनोंका भार अपनी बुद्धीपर धारण किया है, वैसा भार धारण करनेकी आवश्यकता नहीं हैं, ऋग्वेदके प्रारंभसे एक एक मंत्र लिया जाय और उसके जो अर्थ होते हैं वे प्रथम संस्कृतमें और नीचे भाषामें दिये जांय। प्रमाण देनेकी आवश्यकता होतो टिप्पणीमें दिये जांय।

वेदमें इतिहास

वेदमें इतिहास है वा नहीं इस विषयमें ब्राह्मण ग्रंथों और निरुक्तमें ' इति ऐतिहासिकाः ' ऐसा कहकर ऐतिहासिकोंका पक्ष निरुक्तकारने दिया है। इतिहास पक्षका उसने खंडन किया है ऐसा दीखता नहीं है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें भी इतिहास पक्ष माना है और इसीलिये

' इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ' ऐसा कहते हैं। च्यवनकी कथा वेदमें और पुराणोंमें है, ऐसी अनेक कथाएं हैं। इनका इन्कार करना उनके सामने सम्माननीय हो सकता है, कि जो इन ग्रंथोंके साथ परिचित नहीं हैं। जनताको अज्ञानमें रखकर अपना गौरव बढानेके लिये और दूसरोंको गिरानेके लिये ये सब शस्त्रास्त्र बर्ते जाते हैं। जनताको अज्ञानमें कहांतक रखना संभव है ?

वास्तवमें इस संबंधमें करना यह चाहिये कि जो वेद-ब्राह्मण-इतिहास-पुराणोंमें कथाएं आगयी हैं उनका मूल वेदोंमें किस रूपमें है और उसका विस्तार पुराणोंमें किस रूपमें हुआ है, यह सब सप्रमाण प्रकाशित करना। ये बातें गुप्त रखनेसे भविष्यमें कार्य नहीं चलेगा। अहल्या-इन्द्रकी कथा, प्रजापति और उसकी दुहिता, वृत्र और इन्द्रादिकी कथा आदि सैंकडों कथाएं हैं। इनके सब वेद मंत्र, सब ब्राह्मण वचन, सब पुराण कथाएं संग्रहित करके उसका सांगोपांग विचार लिखकर प्रकाशित करना चाहिये। ऐसे ग्रंथ प्रकाशित हुए तो ये सब संदेह दूर हो सकते हैं, अन्यथा संदेह बने ही रहेंगे। पं. शिवशंकरजी ऐसे ग्रंथ लिखते थे, पर वह प्रथा उनके साथ चली गयी है।

हमारा विचार ऐसा है कि रामायण महाभारत जिनको इतिहास कहते हैं, ये ग्रंथ भी आज अंग्रेजीमें जिसको इतिहास (history) कहते हैं वैसे इतिहास नहीं हैं। रामायणमें रामकी सेना बंदरोंकी है और उनको दुम है ऐसा लिखा है। पर वास्तवमें वह मानव जाती थी। धृत-राष्ट्रके १०० पुत्र अपक्व दशामें एक पिण्डाकार गोलेके रूपमें गर्भसे बाहर आये, पश्चात् व्यासने उस पिंडके १०० टुकडे करके घीमें रखे और कई दिनोंके बाद वे पुत्रोंके रूपमें परिपक्व हुए। यह इतिहास नहीं हो सकता। अगस्ति घडेमें उत्पन्न हुआ, वसिष्ठ मित्र और वरुणका संयुक्त पुत्र था। किसीकी उत्पत्ति दर्भस्तंभसे हुई, किसीकी द्रोणसे हुई, किसीकी कानसे हुई ऐसी सैंकडों बातें हैं जो इतिहासकी नहीं हैं।

धृतराष्ट्र तथा गांधारी संस्कृत भाषा जानते ही होंगे। इन्होंने अपने सौ पुत्रोंके नाम दुर्योधन, दुःशासन, दुःशल ऐसे ही कैसे रखे ? क्या उनको पता था कि ये सब दुष्ट ही बनेंगे। दुष्ट माता पिता भी अपने पुत्रोंके नाम ऐसे अनिष्ट अर्थवाले नहीं रखेंगे, पर यहां सौके सौ नाम ऐसे ही बुरे अर्थवाले हैं। क्या दशरथ और दशमुख ये नाम मातापिताके द्वारा रखे गये हैं ? दशरथ दश इंद्रियोंका संयम करनेवाला और दशमुख दश इंद्रियोंसे भोग करनेवाला, ये नाम रखनेके लिये दशरथ और दशमुखके पिता-माताओंको किस कारण स्फूर्ति हो गयी थी ? ऐसा होना संभव भी है ?

इसका उत्तर एक ही है कि ये ऐतिहासिक व्यक्ति भले ही हो चुके हों, पर जिस ढंगसे ये कथाएं रची गयी हैं, वह ढंग ऐतिहासिक नहीं है। अथवा यों कह सकते हैं कि इतिहासकी कथाएं आलंकारिक ढंगसे लिखी गयी हैं। जहां आलंकारिक ढंग आ जाता है, वहां आज जिसको हम इतिहास कहते हैं वह इतिहास नहीं रहता। अर्थात् हमारे इतिहास और पुराण ये ग्रंथ ऐतिहासिक कथाओंको आलंका-रिक ढंगसे लिखकर रचे गये हैं। इसी कारण उनको आजके अर्थमें इतिहास नहीं कह सकते। आजका इतिहास शब्द यथातथ्य इतिहासको ही लगाया जा सकता है। रामायण-महाभारत अथवा पुराण आजकलके इतिहासोंके समान इतिहास नहीं हैं। ये आलंकारिक ढंगके लिखे ग्रंथ हैं। इन की बुनियादमें इतिहास है पर ऊपरकी सब रचना आलं-कारिक है।

वेदमें भी आलंकारिक कथाएं हैं। कथाके आलंकारिक रूपसे लिखनेसे उस कथामें इतिहास होनेका कोई दोष नहीं रह सकता। ' इतिहास ' शब्द देखनेसे डर जानेका कोई प्रयोजन नहीं है। जिस देशमें इतिहास नामसे प्रसिद्ध हुए रामायण-महाभारत ग्रंथ भी आजके अर्थमें इतिहास नहीं है, उस देशके वेद ब्राह्मणोंमें आजके जैसे इतिहास नहीं हैं, यह स्वतः सिद्ध बात है।

इसकी सिद्धताके लिये **' ऋग्वेदमें इतिहास नहीं '** ऐसा लेख इस वेदांकमें लिखनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या इससे कोई ऐसा अनुमान कर सकेगा कि अन्य वेदोंमें इतिहास है, केवल ऋग्वेदमें ही इतिहास नहीं है।

इतिहास मानवोंके चरित्रके याथातथ्य वर्णनका नाम है। यह इतिहास लेखनकी कला ग्रीकोंने अच्छी तरह अपनायी थी। हमारे यहां ऐसे इतिहास अत्यंत अल्प हैं। पर वे भी ग्रीकों जैसे नहीं हैं। हमारे इतिहास आलंकारिक पद्धतिसे बनाये हैं। इसलिये वे इतिहास नहीं हैं।

वास्तविक स्थिति ऐसी होनेपर भी ' वेदमें इतिहास ' यह विषय इतनी वार पुनः पुनः लिखा जाता है कि लोग अब इससे तंग आ गये हैं।

मधुकशा

पं० बुद्धदेवजीका ' मधुकशा ' यह केवल दो ही पृष्ठोंका लेख है। इसमें उन्होंने क्या सिद्ध किया है यह पाठकोंके समझमें आना कठिन कार्य है। संपादकजीकी समझमें यह लेख आया होगा। क्या यह लेख स्वामी-भाष्यके अनुकूल है ? कृपा करके पं० ब्रह्मदत्तजी इसका उत्तर दें। इसमें २० वें पृष्ठपर " यातायातके दोनों मार्ग मिलकर अश्विनौ कहलाते हैं।" ऐसा लिखा है। क्या सचमुच अश्विनौकी यही अवस्था वेदमें बन गयी है। वैदिक देवताओंकी ऐसी करुणास्पद अवस्था ये पंडित न करेंगे तो ही वेदका महत्त्व रह सकता है।

वेदोंमें ईश्वरका स्वरूप

यह उत्तम लेख श्री गंगाप्रसादजी एम्. ए. चीफ जज जयपुर का लिखा है। यह तथा दूसरे भी ११२ लेख अधूरे छापे हैं। विशेषांकोंमें अधूरे लेख नहीं छापने चाहिये। संपूर्ण लेख छापने चाहिये। इस लेखमें ईश्वरका स्वरूप लेखक बता रहे हैं।

लेखके चतुर्थ परिच्छेदमें " सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है " यह आर्य समाजका प्रथम नियम छापा है। इसमें छपाईकी अशुद्धि हुई है। 'जो पदार्थविद्यासे जाने जाते हैं।' ऐसा मुद्रित हुआ है। वस्तुतः 'जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं ' ऐसा छपना चाहिए। 'पदार्थ विद्या ' यह एक पद यहां नहीं है, परंतु ' पदार्थ ' और ' विद्या ' ये दो पद पृथक् हैं। ये पद पृथक् न रखनेसे वाक्य का कुछ भी अर्थ नहीं होता। सब सत्य विद्याओंका आदि मूल परमेश्वर है, उसी तरह सब सत्य विद्याओंसे जो पदार्थ जाने जाते हैं उनका भी आदि मूल परमेश्वर है। ऐसा इस नियमका अर्थ है।

"वेद सब सत्यविद्याओंका पुस्तक है, इन सत्यविद्याओंका अर्थात् वेद का आदि मूल परमेश्वर है। तथा सत्य विद्याओंसे जो पदार्थ जाने जाते हैं, उनका भी आदि मूल परमेश्वर ही है।' सत्यविद्याओंसे प्रकृति, जीव और ईश्वर ये ही तीन पदार्थ जाने जाते हैं, प्रकृतिमें सब सृष्टीके पदार्थ आ गये, इन तीनों पदार्थोंका अर्थात् प्रकृति-जीव-ईश्वरका आदि मूल परमेश्वर है, ऐसी एकत्ववादकी-अद्वैत वादकी नहीं-झलक इस प्रथम नियममें है। कृपा करके पं० ब्रह्मदत्तजी अथवा श्री गंगाप्रसादजी उस नियमका अर्थ त्रैतवाद समर्थन करनेवाला हो सकता हो तो बता दें। श्री स्वामीजी और आर्यसमाज त्रैतवाद मानते हैं, पर यह प्रथम नियम एकत्ववादका स्वरूप बता रहा है। हमारी ओरसे इसमें कुछ अशुद्धि होनेकी संभावना है यह हम मान सकते हैं। पर इस नियमका सच्चा अर्थ प्रकट हुआ तो उससे सबका हित है। इसलिये हमने यह शंका यहां उपस्थित की है।

यह उत्तम लेख भी अधूरा ही छपा है। अधूरे लेख छपनेसे पाठकोंकी मनीषा तृप्त नहीं होती।

यह वेदांक प्रकाशित करके पं० ब्रह्मदत्तजीने वेदधर्माभिमानियोंपर बडे उपकार किये हैं। प्रायः इसमें मुद्रित सभी लेख मननीय और विचारको प्रेरणा देनेवाले हैं। हमारा कहना यह है कि पं० ब्रह्मदत्तजीमें विद्या है, और इस कारण उनपर बडी जिम्मेवारी है। वह चारोंवेदोंका अर्थ प्रकाशित करनेसे ही चरितार्थ हो सकती है। हमारे सामने कोई दूसरा पंडित ऐसा नहीं है कि जो इस कार्यको कर सकेगा। इसलिये हम पं० ब्रह्मदत्तजीसे पुनः पुनः प्रार्थना करते हैं कि, सब अन्य कार्य छोडकर इसी कार्यको वे प्रथम करें।

इसी तरह दूसरा भी एक कार्य हम इनपर रखना चाहते हैं कि वे किसी गुरुकुलमें जाकर वेदाचार्य बनकर रहें और वहांके सब विद्यार्थियोंको रहस्यमय वेदका अर्थ पढावें। इनकी इस अतुल कृपासे यदि प्रतिवर्ष गुरुकुलसे बाहर आनेवाले स्नातक वेद पारंगत हो जायगे, तो भारतवर्षकी कायापलट होनेमें देरी नहीं लगेगी।

हमने इस समालोचनाद्वारा प्रेमपूर्वक ये दो कार्य पं० ब्रह्मदत्तजी पर रखे हैं। हमारी बडी हार्दिक इच्छा है कि वे इन कार्योंको करें और जगत् को लाभ पहुंचावें। नहीं तो इनमें इकट्ठी हुई अपूर्व वेद विद्या वहींकी वहीं विनष्ट हो जायगी और फिर ऐसा दूसरा विद्वान उत्पन्न होना कठिन है।

क्या हम शान्ति चाहते हैं ?

(लेखक— श्री वासिष्ठ)

यदि हम व्यक्तियों, वर्गों एवं राष्ट्रोंसे पूछें कि उनका शान्तिसे अभिप्राय क्या है तो हमें सबकी ओरसे शान्तिकी मांग भिन्न-भिन्न प्रकारकी मिलेगी। कामके बाद आराम और आराम (नींद) के बाद काम (परिश्रम) शान्तिको लाते हैं। भूखेको भोजन और प्यासेको पानी भी शान्तिको लानेवाले हैं। शरीरकी चेतना आलस्यको चाहती है, उसे "सुस्ती" में ही शान्ति है तो प्राण सुखभोगके लिये उद्यमको अपनाता है। यदि विना उद्यमके ही सुख-भोग मिल जाय तो प्राणोंकी मांग भी पूरी हो जाय एवं शरीरको भी सुस्तीके मजे मिलते रहें। "जिसे मिले यों वह खेती करे क्यों" कहावत उसी सम्पन्न भूमिकाकी है जिसमें प्राणोंको सब सुखभोग मिल जाते हैं तथा शरीरको उद्यम में जूझना नहीं पड़ता। प्राण-चेतनामें कुछ ऐसे तत्व भी हैं जो उद्यमको उद्यमके लिये ही चाहते हैं किन्तु वे अत्यन्त अल्पसंख्यक हैं, बहुसंख्या ऐसोंकी ही है जो सुखभोगकी सामग्री या क्रीडा-रंजनके लिये उद्यमको अपनाते हैं। स्वयं खेल कूद करना एकमात्र ऐसा व्यापार है जिसके लिये केवल दूसरोंपर निर्भर नहीं रहा जा सकता अर्थात् इसके लिये शरीरको उद्यमके लिये विवश किया ही जाता है। अनुभव बता सकता है कि झाड़ू लगानेवाला मजदूर झाड़ू लगानेके परिश्रमसे कई गुने परिश्रमवाले किसी खेल (फूटबॉलादि) को पसन्द करेगा और श्रमका समान विभाजन चाहनेवाला कम्यूनिष्ट लीडर-यहाँ तक कि स्टालिन भी पोलोके खेलको छोड़कर उसके दशांश परिश्रमवाले झाड़ूके कामको स्वीकार न करेगा। झाड़ूके काममें भले ही परिश्रम कम हो किन्तु प्राणोंको रंजता नहीं मिलती। प्राणोंका बहुमत रंजता चाहता है। प्राणकी उच्चतर चेतना बहुमत होनेसे अनुपातमें बढ़ जाती है, शरीरकी निम्नतर चेतना अल्पमत होनेसे अनुपातमें गिर जाती है इसीलिये व्यक्तिमें बहुमतकी सन्तुष्टि करनेवाले खेल उल्लासजनक माने जाते हैं और अल्पमत (शरीरकी चेतना) के विरोधके विषादकी न्यूनताका अनुभव प्रतीत भी नहीं होता किन्तु झाड़ूके काममें शरीरका नकार है एवं प्राणोंको रंजता नहीं, इसीलिये वह नीरस एवं रूखा प्रतीत होता; है तथा मनकी यह धारणा कि झाड़ूका काम हेय व निकृष्ट हैं व्यक्तिमें बहुमतको सर्व सम्मतिमें बदल देती है, कोई परिस्थिति बलात् ही उस कामको व्यक्तिसे करा ले; किन्तु वस्तुतः व्यक्तिमें सर्वत्र नकार ही नकार है। जो घोर आलसी हैं उनमें बहुमत परिश्रमके प्रति नकारका है इसलिये ऐसे व्यक्तिमें प्राण शरीरकी चेतनाके बहुमतको सन्तुष्ट करते हुए शरीरको आलस्यमें रखते हुए ताश, शतरंज जैसे खेलोंसे रंजना करते हैं।

मत-बुद्धि मनीषी है, चिन्तन-शील चेतना है। अतः मत-बुद्धिको आदेश दिया जाता है कि वह ऐसा मार्ग खोज निकाले, ऐसी व्यवस्था रच ले जिससे प्राणोंके सब सुख-भोग, आमोद-प्रमोद, यथेच्छ व यथेष्ठ मात्रामें पूरे होते रहें और शरीरको दौड़-धूपके लिये विवश न किया जावे।

चेतनाके उपरोक्त तीन स्तर प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न-भिन्न अनुपातमें विद्यमान हैं, वे हैं मन, प्राण व शरीरकी चेतना सत, रज, तमकी चेतना। इन तीनोंमें सामञ्जस्य व सुसंगति नहीं है और न ही है एकता। व्यक्तिमात्रमें जब जिसका दांव लगता है या जिसमें जिसका अनुपात अधिक होता है वह अपनी चाही कर गुजरता है। प्रेमचन्दके उपन्यास जिसने पढ़े हैं- यद्यपि वे उपन्यास हैं परन्तु मानवी प्रवृत्तिकी व्यञ्जना खूब करते हैं-वह जानता है कि सत, रज, तमकी प्रवृत्तियाँ महात्माओं व सन्तोंको भी बहकाती रहती हैं और वे कैकईकी तरह उनके बहकावेमें आते भी रहते हैं। किन्तु अन्तर इतना ही होता है कि मनीषी, महात्मा व सन्त अपने मनोमय विवेकके द्वारा निग्रह, दमन, शमन करके रज और तमको बेलगाम नहीं होने देते। परन्तु बड़ेसे बड़ा सन्त, धर्मात्मा, विद्वान, तथा सभ्य जब जब मनो ममताके नियन्त्रण, निग्रह, दमन और शमनकी लगामसे छूटा है तब तब वह काम क्रोधादिकी पशुताकी गुफामें जा गिरा है।

व्यक्तिमात्रमें शरीर-तमस गिड़गिड़ा रहा है। "कुछ मत करो, आरामसे पड़े रहो" प्राण, रजस् कोलाहल मचा रहा है सुख-भोग, आमोद-प्रमोदके सर्व सर्वोत्तम प्रचुर साधनोंके संग्रहका। यदि मन-बुद्धि अपने विचार-कौशल से वैभव, सम्पत्ति संग्रह करके शरीर और, प्राण, तमस् व व रजसकी सन्तुष्टि कर देते हैं तो व्यक्ति अपनेको शान्ति अनुभव करता है। या फिर बुद्धि एक नैतिक धारणाका नियन्त्रण स्थापित कर देते हैं जिसके द्वारा कुछ प्राणोंकी मांगोंमें कटौती की जाती है तो कुछ शरीरको परिश्रमके लिये विवश या सहमत किया जाता है। परन्तु यह सब होता है एक अस्वाभाविक समझौता, प्राण और शरीर, रज और तमकी प्रकृतिको न बदलकर उनकी मांगोंको काट छांटकर पूरा करनेका एक व्यापार मात्र। समझौता समझौता ही है उससे अधिक कुछ नहीं और नियन्त्रण, निग्रह, दमन और शमन भी अपनी सीमामें मांग करनेवालोंकी प्रवृत्तियोंको केवल दबाये रहते हैं रूपान्तरित नहीं कर सकते। व्यक्तिमें मन-बुद्धिके नियन्त्रण, दमन और शमन प्राणोंकी स्वच्छन्दताको लगाम लगाये रहते हैं; समाजमें नैतिक नियंत्रण भय और अनुशासन तथा राष्ट्रमें राजनैतिक दण्ड यह काम करते हैं जिसे हम सब शान्ति समझते हैं; क्योंकि व्यक्तिमें मन-बुद्धिकी धारणाएं- "यह पाप है, यह अनुचित है-" प्राणोंकी स्वच्छन्दताको दबाए रहती हैं; समाजमें समाजका बहिष्कार अनादर आदि नियन्त्रण रखते हैं और राष्ट्रमें सब प्रकारके राजकीय दण्ड।

यदि धरणीसे समस्त मानवोंके लिये प्रचुर सुख-भोग, आमोद-प्रमोदका संग्रह कर दिया जावे और शरीरको उनकी प्राप्तिके लिये तनिक भी पलंगसे पैर उतारनेका भी-उद्यम न करना पड़े तो सम्पूर्ण मानव जाति "शांति" का अनुभव करेगी। किन्तु यह हमें अभी ऐसा प्रतीत होता है, ऐसा हो जानेपर तीन और अशान्तिएं आगे आ जांयगी। मन-बुद्धिकी भी अपनी मांग है। आज जितने "वाद" हैं ये सब मन-बुद्धिकी रचनाएं हैं। जिस प्रकार प्राणोंमें नाना प्रकारकी इच्छा, वासना, कामना, लालसा हैं, काम क्रोधादि आवेश आवेग हैं, जिस प्रकार मनुष्यकी देह-प्रकृतिमें मूढ़ता, भय, संशय क्षुद्रता, अन्धता व तामसिकता हैं उसी प्रकार मनुष्यकी मन-बुद्धि-चेतनामें नाना प्रकारकी मान्यता, मत, वरीयता अभ्यास और परिकल्पनाएं हैं। मन-बुद्धिको इन प्रवृत्तियोंकी मांग मनुष्य जातिको उन धारणाओंकी स्थापनाके अन्तिम प्रयत्नकी अशान्तिमें उलझाये हुये हैं और उलझाये रहेंगी। जिन्हें वे मानव जातिके लिये सर्वोपरि सिद्ध व प्रसिद्ध कर रहे हैं और करते रहेंगे। प्राणोंकी नाना इच्छाएं नये नये भोगोंके मार्गोंको आगे लाकर अशान्ति करेंगी, तथा इन भोगोंको उपलब्ध करनेके लिये सुस्तीकी पीनकमें निमग्न रहनेवाले शरीरकी तामसिकताको झंझोड़ा जायगा, वह कराह उठेगा। शरीरकी आकुलता तीसरी अशान्तिको ला खड़ा करेगी।

यह सत्य है कि आत्मामें निर्धन, निराश्रय एवं भूखा केवल भोजन, वस्त्र और आश्रय चाहता है किन्तु इनके मिल जानेपर उसकी नयी मांगें बढ़ने लगती हैं और वे उसे सारी पृथिवीका सम्राट् बन जानेतक उभारती रहती है। ये इच्छायें ही हैं जो साम्राज्यों, पूंजीपतियोंकी सृष्टि करती हैं तथा सभी सम्राट व पूंजीपति बनना चाहते हैं। बन न सकें यह बात दूसरी है। कुछ मनीषी सन्त अपनेको इस मनोवृत्तिका अपवाद कह सकते हैं किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उन विचारकोंने अपनी काया-नगरीके उन अल्प-संख्यकोंको-जो ऐश्वर्य चाहते हैं- अपनी मनोमय धारणाके प्रभुत्व द्वारा मौन कर दिया है इसलिये उनकी प्राण-चेतनामें ऐश्वर्य-लोलुप तत्त्व अल्पसंख्यक व शक्तिहीन होनेसे मूक बन गये हैं। जीवनमें उन्हें यदि अवसर मिला तो वे अपना प्रभुत्व कायम कर लेंगे।

धन, सम्पति और ऐश्वर्यकी सीमा है किन्तु इच्छाओंकी सीमा नहीं। यदि किसी चमत्कारसे यह संभव भी हो जावे कि मनुष्यमात्रके लिये यथेष्ट सुख-भोग सामग्री बिना शारीरिक उद्योगके शरीरको आलस्यमें ही निमग्न रखकर-उपलब्ध हो जावे, वृक्ष, पशु, पक्षी हमारा सब ऐश्वर्य तैयार कर दिया करें तो भी मनुष्यको महत्त्वाकांक्षा, अहंकार- "मैं पन" कुछ और ही चाहेगा। "दूसरा मुझसे पीछे रहे, अवनत रहे" यह भी तो हमारे प्राणोंकी महत्त्वाकांक्षाका पूरक है। "दूसरा दुर्दशाग्रस्त हो" यह भी तो हमारे द्वेषका परिपोषक है। अपनी निर्धनता इतना नहीं काटती जितना पड़ोसीका ऐश्वर्य। प्रभुत्व, अधिकार, शासन, अनाचार, ये भी हमारे प्राणोंको अतिरंजनके लिये

स्वीकार होते हैं। सुप्रवृत्तिमें कुप्रवृत्तियोंके दो विकल्प हमारे सामने आते हैं, अपनी रुचि या परिस्थितिके अनुसार हमें एकको वरण करना होता ही है। कुप्रवृत्तिको एक अपने प्राणोंकी प्रचण्डताके कारण वरण करता है तो दूसरा किसी अनिष्टकी सम्भावनासे बचनेके लिये या किसी दुर्घटित अनिष्टके प्रतिशोधके लिये। अतः यदि "वाद" शान्ति दे सकते तो बुद्ध और ईसाके पश्चात् सारी पृथिवी पर शान्तिका राज्य होता।

योरोपका और हम सबका "मैं पन" अहंकार- केवल अपने प्राणों व शरीरके लिये शान्ति चाहता है अर्थात् जो कुछ ऐश्वर्य, सम्पत्ति "मेरे" पास है वह अक्षुण्ण रहे और इतनी अधिक मिलती रहे कि शरीरको कुछ करना न पडे; उस सम्पत्ति, ऐश्वर्यका निर्माण करनेमें दूसरे घोर परिश्रम करें, अशान्त हों इससे मुझे कुछ सरोकार नहीं। यह मांग, यह अभिलाषा ऐश्वर्यशालीसे लेकर राह-रंक तककी है, सबकी है और फिर अहंकार का "मैंपन" मेरा परिवार, मेरा कुल, मेरा धर्म, मेरी जाति, मेरा राष्ट्र के विस्तारमें अपनेको फैलाता है।

"सबके साथ-दूसरोंके साथ-न्याय, दया, कृपा व उपकारकी मनोवृत्ति बनाये रखो" सन्तोंका यह उपदेश केवल प्राण व शरीरपर अल्पकाल या दीर्घकालके लिये मनोममताकी नैतिकताका नियन्त्रण कायम करता है, प्राण या शरीर-चेतनाका रूपान्तरकरण नहीं। सब पर समान उद्यम बांटनेवाले साम्यवादमें भी व्यक्तिमात्रकी शारीरिक चेतना तमसके कारण उद्यमसे बचनेके लिये व्याकुलता प्रकट करती रहती है जिस व्याकुलतासे बचनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिके मन-बुद्धि अपनी सामर्थ्यके अनुसार जोड-तोड तिकडम लगाते रहते हैं उद्यमसे किसी न किसी प्रकार बचनेकी और शरीरका यही तमस भाग न्यूनाधिक अकर्मण्यतासे लिप्त रहनेके लिये सक्रियताकी हडताल व विरोधात्मक वेदनामय अनिच्छाद्वारा कम्युनिस्टके लिप्सा लोलुप प्राणोंको पूंजीवादकी ओर अग्रसर करता जा रहा है। चतुर, चालाक कम्यूनिस्टोंकी बुद्धिमें उन्हें एक न एक दिन पूंजीवादकी उपासनामें लाकर छोडेंगी क्योंकि शरीरकी पशुता उच्चतर चेतना द्वारा नियन्त्रित व बलात् चालित होनेपर भी दुराग्रही व हठी है तथा प्राणोंकी पशुता लोलुप, वासनामयी है। व्यक्तियों, वर्गों तथा राष्ट्रोंमें साम्यवादके बजाय व्यक्तिकी मन, प्राण व शरीर चेतनामें साम्यवादकी जरूरत है जो एकमात्र उच्चतम आध्यात्मिक चेतनाके रूपान्तरकरण द्वारा सम्भव है किसी मनोमय धारणा, नैतिक निमन्त्रण, राजनैतिक शासन द्वारा नहीं। निकट भविष्यमें कम्यूनिस्टकी बुद्धि उसके प्राणोंकी रंजता तथा शरीरको उद्यमके कष्टसे बचाये रखनेके लिये पूंजीवादके प्रतिग्रहको ग्रहण करेगी।

व्यक्तिमें यही अशान्तिका ऐसा मूल कारण है जो किसी भी "वाद" संयम या विधान द्वारा तबतक नहीं मिटाया जा सकता जबतक शरीरकी चेतनामेंसे तमस् दूर न कर दिया जावे। क्योंकि यदि प्राण इच्छाओंका त्याग कर भी दे तो भी जीवन निर्वाह तो उपलब्ध करना ही होगा। उसके बिना तो जीवन ही समाप्त हो जायगा और जीवन निर्वाह शरीरसे उद्यम जरूर करवायेगा। नैतिक शिक्षण मन-बुद्धिद्वारा शरीरको उद्यमके लिये विवश तो कर सकते हैं किन्तु रूपान्तरित करके उसे उद्यमके लिये प्राकृत नहीं बना सकते क्योंकि शरीरके स्वभावमें तामसिकता, जडता है, प्रशान्तता नहीं।

सहसा प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको जीवनोपयोगी आवश्यकताओंका होना तो युक्ति-युक्त प्रतीत होता है किन्तु प्राणोंकी नाना रूप इच्छाएं, कामना व वासना आदिके होनेका क्या कारण है? वस्तुतः ये इच्छाएं मनुष्यकी अपनी नहीं बल्कि वैश्व प्रकृतिकी हैं जो मनुष्यमें घुसकर मनुष्यको कारण बनाकर मनमानी करनेकी चेष्टा करती हैं जिन्हें मनुष्य अपनी प्रवृत्ति समझ लेता है। मनुष्य वैश्वप्रकृतिके सूक्ष्म महासागरमें एक बुलबुलेके समान है। यह विश्व प्रकृति अनेक स्तरोंकी चेतनाका सूक्ष्म महासागर है। इस मनुष्यमें भी व्यक्ति, भूत, मन, प्राणकी चेतना है। विश्व प्रकृतिके मन प्राण चेतनकी तरंगें, लहरें मनुष्यकी मन, प्राण चेतनामें घुसकर उसकी धारणाओं व इच्छाओंके अनुरूप शरीरको बचाती है। मनुष्य समझता है कि विचार, कल्पना, मत, अभिमत, ममता, मोह, काम, क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या आदि सब मेरी अपनी हैं, क्योंकि वे तरंगें, लहरें मनुष्यकी मन, प्राण-चेतनासे तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं और इस प्रकारके लहरें एक दूसरे की पूरक या विरोधी बनकर

जिस-तिसको बचाया करती हैं । मूलरूपमें विश्व प्रकृति एक है, एकत्वरूप है। यह अहंभाव ही वह विच्छेद है जिसने पृथक्करण कर रखा है । जिस तरह मनुष्यमें प्रत्येक तत्त्व-मन-प्राणादि-अपना अपना व्यक्तित्व, अहंभाव रखते हैं और अपनी अपनी चाही करना चाहते हैं उसी तरह विश्व-प्रकृतिमें भी अहंभावापन्न अनेक प्रवृत्तियोंमें सन्तोष है । किन्तु मनुष्यकी गहराईमें एक ऐसी चेतना भी है जो विश्वकी गहनतम चेतनाके साथ एक है, विश्व उस गहनतम चेतनाका अंश है। वह है व्यक्तिमें व्यक्तिकी अन्तरात्मा । इस अन्तरात्माका एक सामर्थ्य तो वह है जिसे हम जानते हैं, और दूसरा सामर्थ्य वह है जिसे यह उपलब्ध कर सकता है और करेगा। अन्तरात्माका वह सामर्थ्य, जिसे हम जानते हैं, हमें जीवित रखता है । अन्तरात्माका देहमें उपस्थित रहना ही हमें जीवित रखकर हमारे सब यन्त्रोंको स्वसामर्थ्यमें सक्रिय रखता है; मन-बुद्धि चिन्तन करते, विचारते व नियन्त्रण रखते हैं, ज्ञान व कर्मेन्द्रियां अपना काम सुचारुरूपसे करती हैं, शरीर गतिमान रहता है और इस अन्तरात्माके देह त्याग देनेपर सब कुछ मृत होकर सामर्थ्यशून्य हो जाता है, कभी भी न सड़नेवाला शरीर कुछ दिनमें गलसड़कर विकृत हो जाता है। यह अन्तरात्माका सामर्थ्य ही है कि व्यक्तिभूत प्राण व मन, चेतनाको व्यक्तिके शरीरमें रहकर विश्व-प्रकृतिके मन-प्राण-समुद्रकी लहरोंसे मनुष्यके शरीरको, व्यक्तित्वको, बचाये रखता है । पर मनुष्यके अहंभावने मनुष्यको सीमित कर दिया है जिसके कारण व्यक्ति सब कुछ या अधिकसे-अधिक अपने ' अहं ' के लिये अधिकृत कर लेना चाहता है । वह यह मानता ही नहीं कि मुझमें समस्त विश्व और समस्त विश्वमें मैं हूं । किन्तु यदि वह ऐसा विश्वास कर भी लेता है तो उसकी मन-प्राण-देह-चेतना ऐसा अनुभव नहीं करतीं । वे अपनेको पृथक् ही अनुभव करती हैं । उनकी इस भ्रान्त अनुभूतिके कारण विश्वकी अहंभावापन्न मन-प्राणकी शक्तिमें, सत्तामें उसके मन, प्राणको अहंभावमें बहकाकर नाना कौतुक कराया करती हैं। इन समग्र शक्तियों, समाजोंमें सामञ्जस्य, सुसंगति व एकता नहीं है इसीलिये व्यक्तिके मन, प्राण इन शक्तियोंके सुझावके अनुसार क्रीडा-कन्दुक बने रहते हैं और वे व्यक्ति उतने ही सफल होते हैं जितने वे स्वयं समर्थ होते हैं और जितनी समर्थ होती हैं वे शक्तियां, प्रवृत्तियां जो उन्हें प्रेरित करती हैं ।

तो यदि मनुष्य इन प्रवृत्तियोंके सुझावको जो उसकी मन, प्राण-चेतनाके तादात्म्यमें उसके सामने आते हैं । स्वीकार न करें तो वह इच्छाओंसे, आवेश व आवेगोंसे बच सकता है । किन्तु सुझावोंको स्वीकार न करना कुछ सरल नहीं है । मन प्राणकी चेतना अपने अभ्यास, प्रवृत्ति व रुचिके कारण उन सुझावोंको स्वीकार करेगी जो उनके अभ्यासका पोषण करेंगे । परन्तु मनुष्यकी अन्तरात्मा अपने मौलिक स्वरूपके विश्वात्माके साथ एक है । वह अन्तरात्मा जो अपनी मन, प्राण, व देहचेतनाको धारण करती है, उनको रूपान्तरित करके इनमें एकत्व, सामञ्जस्य तथा समत्व भी स्थापित कर सकती है एवं विश्वात्माके साथ एकत्वकी मूलस्थितिमें जाकर जागतिक सत्ताओं तथा सब व्यक्तियों तकसे तादात्म्य, सामञ्जस्य व एकता स्थापित कर सकती है। इसलिये एकमात्र आध्यात्मिकता, अध्यात्म उपलब्धि- वह स्थिति है जो व्यक्तिके बाह्यकरण, मन, प्राण व शरीरमें सच्ची शान्ति ला सकती है । वह मन-बुद्धिको प्रकाश व ज्योतिसे भर सकती है जो आज अपनी शान्त व परिच्छिन्न भूमिकामें सीमित धारणाओं, मतों, वरीयत्वों, अभ्यासों तथा परिकल्पनाओंके खण्डसत्वोंको सर्वोपरि मानकर विश्वभरमें साम, दाम, भेद, दण्डके द्वारा उन्हें स्थापित करनेपर तुले हैं; वह प्राणोंको विश्वशक्ति व आनन्दसे भर सकती है या उनको प्रवाह द्वारा बना सकती है जो आज अपने अहंकारकी परिच्छिन्न भूमिकामें शक्तिकी क्षीण विकृत दुर्बलताकी उपलब्धिके लिये घोर संघर्षका तूफान खड़ा किये हैं तथा तुच्छ, नश्वर एवं क्षणिक आत्म-सुखके लिये नाना प्रवृत्तियोंके क्रीडा कन्दुक बन रहे हैं । वह अन्तरात्मा शरीरको परम शान्तिका निकेतन बना सकती है जो आज अपनी भौतिक स्थूल मर्यादरेखामें तामसिकता, अन्धता, क्षुद्रता व रोगोंका भक्ष्य बना हुआ है । शाश्वत आकाशके होते हुअे भी ब्राड्कास्टिङ्ग, व रेडियो के आविष्कारसे पहले शब्दकी व्यापक उपयोगितासे हम वंचित थे उसी तरह आज हम शाश्वत चेतनाके होते हुए भी आध्यात्मिक अभिव्यक्तिके बिना अनन्त सामर्थ्यसे वंचित हैं । जबतक व्यक्ति व्यक्तित्वको कायम रखते हुए समष्टिका प्रेरक नहीं बन जायगा तबतक सत, रज, तमके

ये ताण्डव नृत्य चलते ही रहेंगे। यही कारण है कि आजतकके लाखों वर्षोंसे किये गये उपाय मनुष्यको पशुताकी गुलामीसे नहीं निकाल सके हैं, " एक शासनतन्त्र नष्ट होता है, दूसरा शासनतन्त्र बनता है, एक हुकूमत खतम होती है दूसरी हुकूमत कायम होती है, शताब्दियोंपर शताब्दियां बीतती जाती हैं, पर मनुष्यकी दुर्दशा ज्योंकी त्यों बनी हुई है। जबतक मनुष्य इसी तरहका रहेगा जैसा कि वह है, अन्धा और अज्ञानी, समस्त आध्यात्मिक वास्तविकताकी ओरसे अपनेको बंद किये हुए, तबतक यह अवस्था बनी ही रहेगी। मानव-जातिकी अवस्थामें वास्तविक सुधार एक ही प्रकारसे हो सकता है और वह है मानव-चेतनाका रूपान्तरित होना, रूपान्तरित होकर प्रकाशमान हो जाना।"ॐ

" धर्ममन्दिर, धर्मसंघ, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र इत्यादि मनुष्यजातिकी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हुवे हैं; क्योंकि वे बौद्धिक मतवाद-सिद्धान्त, बाह्यक्रिया और अनुष्ठानमें, आचार शुद्धि और दर्शनमें ही इस तरह लगे रहे मानो वही मनुष्य जातिकी रक्षा करते हों और जो बात अत्यन्त आवश्यक है उसीकी अर्थात् आत्माकी शुद्धि और शक्तिकी उन्होंने अवहेलना कर दी।" * " एक नवीन सामञ्जस्य और पूर्णताको स्थापित करनेके लिये प्रथम प्रयास किया जा सकता है। यही कारण है कि आज मनुष्यके समाज, ज्ञान, धर्म और सदाचारकी पूर्णताके विषयमें इतने तरहके विचार फैल रहे हैं परन्तु सच्चे सामञ्जस्यका पता अभीतक किसीको नहीं मिला है .... मनुष्यकी वर्तमान प्रकृतिमें केवल थोडा बहुत हेरफेर करके ही नहीं, वरन् उसका परिवर्तन करके ही यह सामञ्जस्य विकसित किया जा सकता है .... आजकल मनुष्य और सभी वस्तुओंकी प्रकृति बेमेल हो गई है, उसकी सुरसंगति बेसुरी हो गई है। उसे सामंजस्य पूर्ण बनानेके लिये मनुष्यके समूचे हृदय, कर्म और मनको परिवर्तित करना होगा, न तो राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओंके द्वारा, न धार्मिक मतवादों तथा दर्शनशास्त्रोंके द्वारा करना होगा बल्कि अपने अादर और जगतके अन्दर भगवानकी उपलब्धि करके और उस उपलब्धिके द्वारा जीवनको एक नये सांचेमें ढालकर करना होगा इसके लिये हमें और भी ऊपर उठना होगा और अध्यात्म योगका आश्रय ग्रहण करना होगा।"×

हिंसाने प्राणोंके शौर्य व उत्साहको या उद्दण्ड प्राणोंकी प्रचण्डताको भयभीत करके निश्चेष्ट कर दिया तो हमने उसे शांति कहा। अहिंसाकी सहिष्णुताने कुछ व्यक्तियोंके प्राणोंकी प्रचण्डताको भडकने नहीं दिया तो हमने उसे शान्ति माना किन्तु शान्ति+ जो कि सामञ्जस्य, समत्व व एकताकी संसिद्धि है, मानवतामें अभिव्यक्त हुई ही नहीं। कामचलाउ व्यवस्था, आतंकजनित निष्क्रियता, इच्छापूर्ति एवं आदर उपार्जन करनेवाली गतिविधिको शान्ति माननेवाली मानव जातिने अपने लाखों वर्ष प्राणोंके नियन्त्रणमें लगाये है पर रह-रहकर नियन्त्रणकी लगाम टूटती रही है, तोडी जाती रही है। अब वह समय आगया है कि मनुष्य जाति भावात्मक शान्तिको जो आत्माका स्वभाव है, आत्मामें निहित है- उपलब्ध करे और यह होगी आध्यात्मिकतासे, एकमें सबको और सबमें एकको अनुभव करके, केवल विश्वास करके ही नहीं। आज जितनी तामस साधनासे कोई मनुष्य सच्चे अर्थोंमें बलात् नियन्त्रित भूमिकामें नहीं-नैतिक सन्त बन सकता है उससे कहीं कम आध्यात्मिक साधनामें वह नियन्त्रित की जानेवाली चेतनाको रूपान्तरित करके पवित्र, आलोकित व सशक्त कर सकता है; कारण नैतिक सन्तमें मनोमयता नियन्त्रण करती है और आध्यात्मिक साधकमें आत्मा रूपान्तरकरण व पवित्रीकरण। मनोमयतासे आत्माका सामर्थ्य अनन्तगुणा है।

हमारे उपरोक्त विवेचनका यह तात्पर्य नहीं कि प्राणोंकी प्रचंडताको नियन्त्रित न करके उसे खुले-खेलनेके लिये बेलगाम कर दिया जाय। या शरीरकी तामसिकताकी घोर अकर्मण्यता, आलस्यको पाला पोसा जाय। नहीं, नियन्त्रणकी जरूरत है उन्मत्त प्राणोंको विनाश कार्यसे

ॐ मातृवाणी पृष्ठ १६ * श्री अरविन्द-हमारा योग और उसके उद्देश्य

× ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ५-६

+ हे प्रभु! तेरी शान्तिको हम चाहते हैं, शान्तिकी किसी छाया मूर्तिको नहीं तेरी स्वतन्त्रताको हम चाहते हैं; स्वतन्त्रताकी किसी छायामूर्तिको नहीं; तेरी एकताको हम चाहते हैं; एकताकी किसी छायामूर्तिको नहीं। कारण एकमात्र तेरी शान्ति, तेरी स्वतन्त्रता और तेरी एकता ही उस अन्धी उद्दण्डता, छल-कपट और मिथ्याचारको जीत सकती है जो अभीतक पृथ्वीपर राज्य कर रहे हैं। (श्री मां- नववर्ष १९४६)

रोकनेके लिये, शरीरको सक्रिय करके सर्जन कार्य करानेके लिये किन्तु नियन्त्रण, चिकित्सा अर्थात् रूपान्तरकरण व पवित्रीकरणका प्राथमिक साधन होना चाहिये अन्तिम ध्येय नहीं। पागलखाना पागलकी चिकित्साके लिये है पागलको केवल नियन्त्रित रखनेके लिये ही नहीं आजतक व्यक्तिमें मनोमयता, समाजमें नैतिकता, राष्ट्रमें शासनविकृत एवं रोगी प्राणोंको नियन्त्रित रखकर प्रकोपसे बचाते रहे हैं। किन्तु उन्हें चिकित्सा द्वारा रूपान्तरित करके प्रकृतिस्थ व स्वस्थ नहीं बनाया गया। आजतक भी मनुष्य इन्द्रियोंद्वारा हंकाये जानेवाला 'पशु' ही है। इन्द्रियोंको हांकनेवाला 'गोपाल' नहीं बना। श्री अरविन्दने मनुष्यकी इसी दयनीयबद्ध दशाके सम्बन्धमें सन् १९२२ में देशबन्धु श्री चितरंजनदासको लिखे एक पत्रमें लिखा था, ... "मनुष्य जिस कार्यचक्रमें अनादिकालसे परिभ्रमण करता आ रहा है। उससे वह कभी मुक्ति नहीं पा सकता जबतक कि वह एक नये सत्यकी नींवपर प्रतिष्ठित नहीं हो जाता। ····· जीवन और कर्मकी सच्ची बुनियाद है आध्यात्मिकता, अर्थात् ऐसी एक नवीन चेतना जो केवल योगसे प्राप्त होती है।"

आज जिसे शान्ति कहा जा रहा है वह कुछ नहीं है केवल "युद्ध न हो" यह अभिलाषा मात्र है। किन्तु युद्ध तो इस द्वन्द्वका नाम है जो प्रकाश और अन्धकारके, सत्य और मिथ्याके बीच चल रहा है। मनुष्य वह यन्त्र है जिसको प्रकाश एवं सत्य या अन्धकार एवं असत्य उपयोगमें लाते हैं। यदि प्रकाश तथा सत्य अपनेको निस्सृत भी कर लें तो भी द्वन्द्व अर्थात् युद्ध तो चलेगा ही। कारण अहंकारने अन्धकार व मिथ्याको असंख्य सत्ताओंमें बांट दिया है जो आंशिक रूपमें अर्ध आलोकित व आंशिक सत्य होनेके कारण सामञ्जस्य, समत्व व एकत्वसे वंचित होकर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये आपसमें संघर्ष करती रहती हैं; मनुष्य जाति तो इनकी सेना, इनकी वाहन मात्र है। गत युद्धोंसे यथेच्छ फल न पाकर आजके दार्शनिक, विचारक शान्ति सम्मेलन करते हैं किन्तु मानव-राष्ट्रके शरीरमें अभी बहुतसे व्रण बाकी हैं जिनका ओपरेशन युद्ध करेगा। गत युद्धोंने साम्राज्यवादके व्रणको चीर दिया है। एशियाके राष्ट्रोंकी मुक्ति गत युद्धका भागवत प्रसाद है। हिटलर और टोजोके अनुयाइयोंकी प्रचण्डताको गत युद्धने ही निर्मूल किया है और युद्ध ही इन प्रचण्डताओंको दूर करेंगे जो बरसाती विषधरोंके समान यत्रतत्र, सिर उभार रही हैं। यह जान करके, नैतिक नियन्त्रणकी व्यवस्था स्थापित करके "एक राष्ट्र" की स्थापना "आध्यात्मिक आधार" पर हो सकेगी और तभी यह साधना अनुभूति द्वारा सिद्धि पायेगी कि एकमें सब और सबमें एक हैं। हमारे चारों ओर सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, प्रजाति आदिको कारण बनाकर आसुरी प्रवृत्तिमें मनुष्योंके प्राणोंमें प्रचण्डता भर रही हैं। ये सब छोटे मोटे व्रण हैं। बड़ा व्रण है कम्यूनिज्मका कैन्सर। यह जानते हुए भी कि काम्यूनिज्म-कैन्सरको समस्त पृथ्वीपर फैलानेके लिये लिम्फका प्रवाह मास्को-स्टालिन-स्रोतसे हो रहा है, "शान्ति सम्मेलन" स्टालिनको नहीं बुलाते, जिसकी ओरसे शान्तिको खतरा है। सन्त, पादरी कैन्सरको दूर करनेके बजाय "अणु बम" के निर्माणको रोक देना चाहते हैं। कृत्रिम शान्ति या श्मशानकी शान्ति आ सकती है- यदि उसे शान्ति कहा जाय। यदि सन्त, पादरी, दार्शनिक सब मिलकर स्टालिनके सामने सब राष्ट्रों और देशोंसे आत्मसमर्पण करा दें और मनुष्यमात्रको मास्को-स्टालिनकी कम्यूनिस्ट फैक्टरीकी मशीनरीका पेंच और ढिबरी बननेके लिये विवश कर दें। यदि शान्तिवादी भावुकतावश निष्क्रिय शान्तिको द्वारा स्टालिनके लिये अन्यथा उपयोगी होनेसे बचना चाहते हैं तो उन्हें हाइड्रोजन बमसे भी अधिक समर्थ किसी महत्तम बमके निर्माणकी सोचना चाहिये। वरंच स्थितिकी ओरसे आंख बन्द कर लेनेपर सिरपर आई हुई आपत्ति टल नहीं जायगी। स्टालिन एंड कम्पनीका एक मात्र ध्येय है 'समस्त पृथ्वीको कम्यूनिजमके जूएके नीचे लाना या अणुबमसे सबको समूल नष्ट कर देना या स्वयं नष्ट हो जाना।' उपरोक्त चुनौतीको लक्ष्यमें रखकर ही मनुष्य जातिको काम करना है। अणुबमने ही एशियामें जो शान्ति स्थापित की है- यद्यपि एशियाके देशोंकी स्वाधीनताका उस अणुबम-काण्डसे गहरा सम्बन्ध है क्योंकि यदि वह काण्ड न हुआ होता तो जापानका युद्ध चलता होता और एशियाके राष्ट्रोंकी स्वाधीनता अनिर्णीत या उपस्थागित ही होती यदि वह इसें

मान्य नहीं है तो हमें स्टालिनको समझाना चाहिये क्योंकि सेवाग्राम न शान्तिको मिटा सकता है न स्थापित कर सकता है। जो मिटा सकता है, मिटा रहा है और मिटानेपर कटिबद्ध है उस बिडालको नियन्त्रित न करके सेवाग्राममें घंटा बजानेसे क्या लाभ? खसकी रावटी किसी लू वाले देशमें होनी चाहिये न कि बर्फसे ढके हिमालय पर। सेवाग्राममें शान्ति सम्मेलन करनेके बजाय मास्कोमें स्टालिके द्वारपर शान्ति सम्मेलन होना चाहिये था।

यदि हमें सच्ची शान्तिकी, सत्यकी प्रकाशकी, शान्तिकी अभिलाषा है जो आत्माका स्वभाव है, प्रकाश एवं सत्यका गुण है, सत्ताका आनन्द है तो वह व्यक्तिमें तब उपलब्ध होगी जब व्यक्ति अपनेमें आत्माको अभिव्यक्त करके आत्माकी चेतनामें रहता हुआ आत्मचेतनाके द्वारा असत्यकी शक्तियोंसे बाह्य चेतनाको मुक्त करके उसे अन्तरचेतनासे प्रेरित व रूपान्तरित करेगा और मनुष्य जातिमें तब उपलब्ध होगी जब व्यवस्थाजन्य शान्तिके लिये क्षात्र-बलके द्वारा वे सब मनुष्य जो अज्ञान, असत्य व अन्धकारकी आसुरी शक्तियोंकी ओर अपने आपको दिये हुए हैं, दे रहे हैं,— सामर्थ्यहीन कर दिये जायेंगे या फिर विनष्ट। यह सब युद्धसे होगा। अदिव्य वह मनुष्य है जो मिथ्याको मिथ्या मानता हुआ उसे हेय समझकर उससे बचना तो चाहता है किन्तु अशक्त होनेके कारण अज्ञानकी कुप्रवृत्तियोंके द्वारा बलात् अधिकृत हो जाता है। ऐसे व्यक्तियोंमें नियन्त्रण रचनात्मक कार्य करते हैं। दिव्यताविरोधी असुर वह है जिसने अपने आपको मिथ्या पक्षकी ओर समर्पित कर दिया है, मिथ्याको सत्य, श्रेष्ठ मान लिया है और वह अब असुरकी राक्षसी, पैशाचिक प्रेरणाको सत्य मानकर उसके अनुकूल सब कुछ करनेको कटिबद्ध है; कहने भरको वह स्वाधीन है किन्तु यथार्थमें वह असुरके हाथकी कठपुतली है, अन्धकारकी प्रवृत्तिका खिलौना है। उदाहरणार्थ जिसका दृढ विश्वास है और जिसकी धर्म-पुस्तकमें लिखा है एवं दिनरात सिखाया जा रहा है कि जो उसके सम्प्रदायका अनुयायी नहीं है उसको बलात् भी अपने पन्थमें लाने या कत्ल कर देनेसे हूरोंवाली जन्नत मिलेगी तो वह भिन्न सम्प्रदायवालोंको कत्ल करनेसे क्यों चूकेगा और विशेषतः तब जब कि उसके प्राणोंमें हूरों (सुन्दरियों) के लिये घोर लिप्सा और लोलुपता भरी हो? आसुरी प्रवृत्तियां अवसर पाकर ऐसे व्यक्तियोंको प्रेरणा देंगी "बाजीचुक कत्ल है, कत्ल करो और जन्नतके बादशाह बनो। हूरोंकी सोहबतसे बढकर दुनियांमें क्या कोई सुख हो सकता है? अपने सम्प्रदायके प्रतिकूल किसी भिन्न सम्प्रदायके सन्तकी पवित्र शिक्षा भी उसके लिये कुफ्र व गुनाह होगी।

हिटलरका दृष्टिकोण भी ऐसा ही था कि जर्मनोंको छोडकर शेष सब मनुष्य गुलाम हैं, शासक होने योग्य नहीं। वे केवल शासित होने चाहिये। दूसरा दृष्टिकोण है जो कम्यूनिष्ट नहीं है वह यातो कम्यूनिष्टोंके आधीन रहे या मार दिया जावे। इस प्रकारके मनुष्य, समाज, सम्प्रदाय, संघ या राष्ट्र वह समूह है जिसने अपने आपको असुरको दे दिया है, असुरका यन्त्र बन गया है। कहनेभरको वह स्वाधीन है किन्तु यथार्थमें वह आसुरी शक्तिका यन्त्र है। यह कहा जा सकता है कि आसुरी शक्तिको नष्ट कर दिया जाय, किन्तु कैसे? आसुरी शक्ति कोई हाड मांसका बावनगजा राक्षस तो है नहीं। वह तो अपने सूक्ष्मरूपमें ही मानव-यन्त्रोंको चबा रही है। जबतक इन मानव-शरीरोंको, जो असुरके यन्त्र हैं नष्ट न कर दिया जायगा तबतक वे असुरके यन्त्र बने रहेंगे और असुर द्वारा उपयोगमें लाये जाते रहेंगे। यदि सन्तोंने सिर झुकाकर आत्म समर्पण करके धन सम्पत्ति, नगर, देश और जनताको इन आसुरी यन्त्रोंके हवाले कर दिया तो भी शान्ति न होगी। भेडिये भेडोंको खाकर फिर आपसमें एक दूसरेको खायेंगे क्योंकि सामञ्जस्य, सुसंगति, समता व एकता अज्ञात व अन्धकार की आसुरी सत्ताओंका स्वभाव नहीं है; वहां सत, रज, तम है और वह है असंख्य प्रतिकूल अनुपातोंमें। हमारी वर्तमान शान्तियाँ शान्तियां नहीं हैं बल्कि अवसरकी खोज हैं, दांव-घातके अन्तर विराम हैं। इन सबमें असुरकी गुप्तचर शक्तियां ही असुरोंकी विजयके लिये अर्थात् अनाचार, अत्याचार व घोर अन्यायको शक्तिसम्पन्न बनानेके लिये अति दूरदर्शी विचारकों, लीडरोंके सामने नाना प्रकारकी कल्पित व भावुक दुश्चिन्ताओंके भविष्यकी सम्भावना रखकर उन्हें किंकर्तव्यकी भूमिकामें लाकर शान्ति सम्मेलनके लिये उकसा रही हैं तो दूसरी ओर दुस्साहसी नेताओंको डिक्टेटरकी भूमिकामें ले जाकर हिटलर बन जानेका प्रोत्साहन दे रही हैं।

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

मण्डलेश्वर

६, ७ सितंबर १९५२ की परीक्षाका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव माननीय श्री न्यायाधीश **सि. एन० आचार्यजी** की अध्यक्षतामें निर्विघ्नतापूर्वक श्री होल्कर महाराजा निर्मित भवनके सभागृहमें निम्नांकित कार्यक्रमके साथ सुसंपन्न हुआ।

१- राष्ट्रीय-गीत-कन्याओं द्वारा

२- अध्यक्षपद निर्वाचन, समर्थन प्रस्ताव तथा अध्यक्षपद ग्रहण

३- वार्षिक रिपोर्ट वाचन

४- प्रमाण-पत्र तथा पारितोषिक वितरण

५- श्रीमान् **तेलंग मास्तर साहेब, वालिवडेकर वकील सा.** तथा **दत्तात्रय गोपाल जोशीजी** वकील सा. का ' संस्कृत भाषा अवश्य पढनी चाहिये ' इसपर भाषण हुआ। छात्र, अध्यापकमण्डल और **एम. आर. वेळणकर** जी महाशय (महात्मा गांधी विद्यालयके अध्यक्ष) की असीम कृपासे यह कार्य संपन्न हुआ।

केदिला

ता० १४-१२-५२ के दिन ग्रामको इस केन्द्रका, अतीत सितम्बर १९५२ ई० की संस्कृत-भाषा प्रचार परीक्षा संबन्धी प्रमाण-पत्र-वितरणोत्सव ब्रह्म श्रीमान् **परकजे पुरोहित नारायण भट्टजीकी** अध्यक्षतामें एक विशेष समारोहके साथ संपन्न हुआ।

श्री **चक्रकोडी, दम्बे, शम्भु शास्त्रीजी**ने "आधुनिक ब्राह्मण समाजमें विवाह संस्कारका स्थान " इस विषयपर बोलते हुए यह बताया कि हम संस्कृत भाषाके ज्ञानके बिना वेदोक्त संस्कारोंका महत्व नहीं जान सकते। **प्र० प्र० मि० पु० शङ्करनारायण भट्ट** जी तथा **तालतजे कृष्ण भट्ट** जीने " संस्कृत भाषाके सीखनेसे जितनी ज्ञानवृद्धि, अन्तःसंतोष, और आत्मशक्ति प्राप्त होती है उतनी और किसी भाषाके अध्ययनसे शायद ही संभव हो " इस बातका समर्थन किया। अन्य कई विद्वानोंने यथोचित भाषण दिये। केन्द्र व्यवस्थापक **च० मू० ईश्वर शास्त्रीने** स्वाध्याय मण्डलके साधित कार्य, ध्येय और उद्देश्यका पूरा विवरण कह सुनाया। अन्तमें अध्यक्षजीने संस्कृत भाषा प्रचारके बारेमें स्वाध्यायमण्डल तथा इस परीक्षा केन्द्रकी तारीफ करते हुए यह कहा कि हम भारतीयोंके प्राप्त हुए स्वातन्त्र्यकी रक्षाके लिए, भारतकी कीर्ति और भी बढानेके लिए, तथा हिन्दुओंका हिन्दुत्व स्थिर रहनेके लिए संस्कृत भाषा सीखना परमावश्यक है। इसके बाद केन्द्रव्यवस्थापकसे अध्यक्षजीके करकमलों द्वारा केन्द्रमें सर्व प्रथमोत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको स्थानीय पुस्तकोपहारप्रदानके साथ सब परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र वितरित किये गये। मङ्गलगानके पश्चात् सभा विसर्जन हुअी।

सागाम

(काश्मीर)

२४ दिसम्बर १९५२ रविवारको यहांपर संस्कृत प्रेमी नवयुवकोंकी ओरसे एक बैठक हुई। जिसमें संस्कृत-भाषा-प्रचार समितिका चुनाव किया गया। जिसका विवरण निम्न प्रकारसे है—

१. अध्यक्ष ··· ··· ··· श्री निरंजन नाथ ज्योतिषी।
२. उपाध्यक्ष ··· ··· ··· श्री राधाकृष्णजी कौल।
३. ,, ··· ··· ··· श्री प्रेमनाथ शर्मा।
४. मंत्री ··· ··· ··· श्री सोमनाथजी खार।
५. सहायक मंत्री ··· ··· ··· श्री प्रेमनाथ ज्योतिषी।
६. कोषाध्यक्ष ··· ··· ··· श्री सूर्यनाथ ज्योतिषी।

सदस्यः— १. श्री अर्जुननाथजी।
२. श्री जगन्ननाथजी।
३. श्री निरंजननाथ कौल।
४. श्री सूर्यकंठ जी।
५. श्री नरेन्द्रनाथ कौल।

चुनाव कार्य समाप्त करके केन्द्र-व्यवस्थापक श्री **सूर्यनाथ ज्योतिषी** प्रभाकर, के हाथ परीक्षार्थियोंमें प्रमाण पत्र वितरण किये गये।

विशेष योग्यतावालोंमें सं० भा० प्र० समितिकी ओरसे पारितोषिक (पुस्तकोंके रूपमें) बांट दिया गया। संस्कृत प्रेमी साधारण विद्यार्थियोंमें मिठाई इत्यादि बांट दी गई।

समितिके सदस्योंके अतिरिक्त अन्य सज्जन भी समारोहमें संमिलित हुये थे। जिनके सामने केन्द्र-व्यवस्थापक श्री **सूर्यनाथ ज्योतिषी** 'प्रभाकर' ने अपने भाषणमें संस्कृत-भाषाको सब भाषाओंकी जन्मदात्री ठहराया। अपने वक्तव्यमें उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक काश्मीरी हिन्दूका पहला कर्तव्य यही है, कि वह मातृभाषा संस्कृतकी जानकारी अवश्य प्राप्त करें। हमारी सभ्यता तथा संस्कृतिका मूल तत्व इसीमें समाया हुआ है, समारोहकी समाप्ति पर विद्यार्थियोंसे आगामी परीक्षाओंमें सहयोग देनेकी प्रार्थना की ॥

कुंभकोणम्

स्थानीय टाउन हाईस्कूलमें २६-१२-५२ शुक्रवार शामको संस्कृत विद्यार्थियोंकी एक सभा बुलाई गई। इस अवसरपर स्कूलके संस्कृत अध्यापक **आर नटेश शर्मा** जीने अध्यक्षका आसन ग्रहण किया। **के. आर. वी. शास्त्रीने** "संस्कृतकी महत्ता" के बारेमें व्याख्यान दिया। अध्यक्षजीने संस्कृत परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियोंको प्रमाण पत्र वितरण किये तथा प्रथम श्रेणी वालोंको पुरस्कार स्वरूप पुस्तकें भी दीं।

हैद्राबाद

हैद्राबाद केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव ता० ३ दिसंबरको राज्यके शिक्षामन्त्री माननीय **श्री फूलचंदजी गांधी** की अध्यक्षतामें बडे उत्साहके साथ विवेकवर्धिनी महाविद्यालयके भवनमें सम्पन्न हुआ। स्थानीय समितिके पदाधिकारी एवं सदस्योंके अतिरिक्त नगरके अन्य सन्मान्य नागरिक भी बडी संख्यामें उपस्थित थे। इस अवसरपर सं-भा० प्र. समितिके परीक्षामन्त्री श्री **महेशचन्द्र शास्त्री** भी उपस्थित थे। सभाका आरम्भ वेद मन्त्रोंके उच्चारणसे हुआ। संस्कृत भाषाके महत्वके विषयमें माननीय शिक्षामन्त्रीका लगभग एक घण्टेतक अत्यन्त रोचक भाषण हुआ। स्थानीय समितिके अध्यक्ष प्रो० **सीताराम रावजी एम. ए.** का प्रारम्भिक भाषण हुआ। मन्त्री श्री **ऋभुदेवजी** ने समितिका वार्षिक विवरण पढकर सुनाया। श्री प्रो. **बी. आर. शास्त्री** का संस्कृतमें भाषण हुआ। अन्तमें केन्द्रव्यवस्थापक श्री **माधवरावजी पाठक** ने आगत महानुभावोंको धन्यवाद दिया। राष्ट्रगीतके पश्चात् यह सभा विसर्जित हुई।

चांदोद

ता० १९-१-५३ ई. को पवित्र नर्मदा तटपर बसे हुए इस पुण्य क्षेत्रमें संस्कृतभाषा परीक्षाओंका प्रमाणपत्र वितरण उत्सव मनाया गया। यह समारोह **जाम्बू ब्राह्मण काण्व संस्कृत पाठशालाके** नवीन भवनमें सम्पन्न हुआ। इस अवसरपर परीक्षामन्त्री श्री **महेशचन्द्र शास्त्री** भी उपस्थित थे। वैदिक प्रार्थनाके पश्चात् पाठशालाके आचार्य श्री **शास्त्री छगनलाल जी भट्टने** वार्षिक विवरण सुनाया तथा वहाँके अध्यापक श्री **शास्त्री गौरीशंकरजी भट्टने** संस्कृतमें अपना भाषण दिया। इसके पश्चात् श्री परीक्षामन्त्रीका भाषण हुआ। अन्तमें प्रमाणपत्र वितरण किये गये तथा वैदिक राष्ट्रगानके साथ सभा विसर्जित हुई।

इस अवसरपर नगरके प्रतिष्ठित विद्वानों एवं शिक्षकोंके भी बोधप्रद एवं उत्साहवर्धक भाषण हुए।

भरुच

ता० २०-१-५३ ई. को भरुच केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव **श्री पं. सातवळेकरजी**-अध्यक्ष स्वाध्यायमण्डळ-की अध्यक्षतामें मनाया गया। केन्द्रव्यवस्थापक श्री **चिमनलालजी बी. शाहने** स्थानीय प्रगतिका परिचय कराया एवं श्रीमान् **धर्मेन्द्र जी** मास्तर M. A. मन्त्री सं. भा. प्र. समिति भरुचने वार्षिक विवरण पढकर सुनाया। पूज्य **पं. सातवळेकरजीके** भाषणके पश्चात् प्रमाणपत्र वितरित किये गये।

नगरकी अन्य सभी शिक्षा संस्थायें संस्कृतके इस प्रकार कार्यमें पूरा सहयोग देरही हैं। भरुच केन्द्रका कार्य गुजरातके केन्द्रोंमें प्रथम श्रेणीका है। इस संपूर्ण सफलताका श्रेय यहांके कर्मठ प्रचारक महानुभावोंको ही है।

अन्य भाषणोंके पश्चात् राष्ट्र गानके साथ यह समारोह समाप्त हुआ।

उरई केंद्र विवरणम्

(लेखक— श्री. दशरथश्रोत्रियाचार्य)

परमकारुणिकस्य परमेश्वरस्य अनुकम्पया अद्यास्माकं प्रसन्नतायाः पारावारो नास्ति यतो भवन्तः सर्वे स्वस्वपरमावश्यकं कार्यं विहाय अस्माकं निमन्त्रणं स्वीकृत्यात्र समुपस्थिताः। कथं च न भवतु ? संस्कृत भाषा अस्माकं भारतीयानां जीवने अतिगभीरं व्याप्ता वर्तते। एकमपि ईदृशं आर्यगृहं नास्ति यत्र संस्कृत भाषा येनकेन रूपेण न व्यवह्रियते। अस्माकं सर्वेषु पर्वसु सम्पूर्णेषु च आनन्दोत्सवेषु संस्कृतभाषाया एव प्रधानता दृश्यते। देवस्तोत्रेषु, विशालविशालेषु राष्ट्रीयसमारोहेषु, राष्ट्रीयगीतानां पदावलिषु च सर्वत्र संस्कृतभाषाया एव दर्शनं भवति। सत्यं जानीत, अस्माकं सर्वेषां जीवनेन सह संस्कृतभाषायाः सर्वाधिका घनिष्ठता, अनिवार्यता, एकरसता च वरीवर्ति। अस्माकं राष्ट्रेण साकमस्या भाषायाः सम्बन्धो नाद्यतनः, अपितु यदा अस्माकं जन्मभूम्याः अस्तित्वं मूर्तिमयं बभूव ततः प्रभृत्येव अनया सह अस्माकं सम्बन्धः। अस्माकं धर्मः संस्कृतिः सभ्यता च सर्वथा अनया सार्धं संग्रथिता। अपि च; हिमविन्ध्याद्यो महान्तः पर्वताः, गंगायमुनाब्रह्मपुत्रागोदावरीमहानदीनर्मदातापीकृष्णकावेर्यादयो निर्मलजला नद्यः, अङ्गवंग सौराष्ट्रमहाराष्ट्रादयो जनपदाः किम्बहुना सर्वे नगरपत्तनग्रामा वनवृक्षलताश्च स्वस्वनामसंकीर्तनेन अद्यापि संस्कृत भाषागौरवमुच्चैः उद्घोषयन्ति। एवं विधायां भारतीयजडचेतनव्याप्तायां भाषायां यदि भवता मनुरागः स्यादित्यत्र किमाश्चर्यम् ? अयं तु प्रसन्नताया एव विषयः। अद्यत्वे तु पाश्चात्यविद्वान्सोऽपि संस्कृतभाषामहत्वं स्वीकुर्वन्ति। तेषां बहवः ' संस्कृतभाषा सर्वासां विश्वभाषाणा माता ' इत्यपि मन्यन्ते। भारतीय भाषाणान्तु इयं भाषा अद्यापि मातृवत् परिपालनं करोति। अस्माकं संविधाने स्वीकृता राष्ट्रभाषा हिन्दी अपि संस्कृतनिष्ठा सत्येव नीतिकलासाहित्यदर्शनविज्ञानव्यवहारयोग्या भवितुमर्हतीति नात्र कश्चित् सन्देहावकाशः।

एतत्सर्वं सम्प्रधार्य मया संस्कृतभाषा प्रचाराय तत्प्रसाराय च विचारो विहितो यत्नश्चाङ्गीकृतः। अतः प्रभृति वत्सराणां त्रितयं व्यतीतं यदाहं विद्वद्वरेण्यैः श्रीपाददामोदरसातवलेकरै रचितस्य संस्कृत स्वयंशिक्षक नाम्नः पुस्तकस्य महतायासेन संशोधनं परिवर्धनं च कृत्वा निज रीत्या एकवर्षीयसंस्कृतभाषा पाठ्यक्रमं निर्मितवान् घोषणां च कृतवान् यदहं " अहं एकेन वर्षेणैव असंस्कृतज्ञान् प्रौढपुरुषान् स्वकीयरीत्या पाठयित्वा संस्कृतज्ञान् सम्पादयितुं शक्नोमि " इति एतद्विज्ञाय त्रयो महानुभावा मम सन्निधौ संस्कृताध्ययने प्रवृत्ताः। ते च सर्वश्रियः प्रिन्सिपल किशोरीलालः खेर, गान्धीराम फोकसः, नाथूरामपठारी च। एषां श्रीनाथूरामः स्वजनकस्य निधनकारणात् अल्पसमयानन्तरमेव उपारमत अध्ययनात्। श्रीगान्धीरामफोकसोऽपि रोगोपचारबहुव्ययापूर्तिहेतुना स्वपठनं मध्ये एव स्थगयतिस्म। प्रिन्सिपल किशोरीलालस्तु अतिपरिश्रमेण तीव्ररुचिपूर्वकं संस्कृतभाषाध्ययने निरतोऽभूत्। अल्पसमयेनैव बहुज्ञानं प्राप्तवान् तस्य संस्कृतभाषाया अनुरागं रुचिं च अद्यापि अहं न विस्मरामि। अन्ततो गत्वा डिग्रीकालेजनिर्माणकार्ये प्राणपणेन संलग्नोसावपि पूर्णं पाठ्यक्रमं समाप्तुं नशक्नोतिस्म। एवं प्रौढानां शिक्षार्थिनामभावे मया द्वाभ्यां वर्षाभ्यां संस्कृतभाषा प्रचारमुद्दिश्य उपर्युक्तानां श्रीपाददामोदरसातवलेकराणां स्वाध्यायमण्डलेन प्रचलितानां संस्कृतभाषा परीक्षाणां केन्द्रमत्र नगरे स्थापितम्। तासां परीक्षाणामपि पाठ्यक्रमाः अतवि सरलः सुबोधश्च अस्ति। वर्षाभ्यन्तरे द्वे परीक्षे भवतः। सर्वाश्चतस्रः परीक्षाः भवन्ति-प्रारंभिणी, प्रवेशिका, परिचयो विशारदश्चेति। अनेन प्रकारेण द्वाभ्यामेव वर्षाभ्यां जनाः संस्कृतभाषायाः प्रचुरज्ञानं प्राप्तुं शक्नुवन्ति।

" सर्वप्रथमं अस्माकं केन्द्रे एकपञ्चाशद्दसवीयेब्दे फरवरी मासे परीक्षाणां व्यवस्था कृता। तदानीं क्रमशः प्रारंभिण्यां द्वादश प्रवेशिकायां त्रयः परिचये एको विशारदे च एकः सर्वे मिलित्वा सप्तदशच्छात्रा उपाविशन्। तेषु चतुर्दश परीक्षायामुत्तीर्णाः। तस्मिन्नेव वर्षे सितम्बरे मासे प्रारंभिण्यां त्रयः प्रवेशिकायामेकः परिचये चैक इति मिलित्वा पञ्चछात्रा उपाविशन्। तेषां चत्वार समुत्तीर्णाः।

द्विपञ्चाशद्दसवींयेब्दे फरवरीमासे प्रारंभिणी परीक्षायां षोडश प्रवेशिकायामेकः परिचये एकः विशारदे चैक इति मिलित्वा एकोनविंशतिः छात्रा उपाविशन् तेषु च सप्तदश समुत्तीर्णाः। विगते सितम्बरे मासे च प्रारंभिणीपरिक्षायामेकविंशतिः प्रवेशि

कायां अष्टौ विशारदे च द्वौ इति मिलित्वा एकत्रिंशत् छात्रा उपविष्टाः । तेषु च षोडश छात्राः सफलतां लेभिरे । एवञ्चास्मिन् केन्द्रे अद्यावधि द्विसप्ततिश्छात्रा समुपाविशन् । तेषु चैकपञ्चाशत् सफलायासा अभवन । ''

इदश्चास्य केन्द्रस्य द्वयोर्वर्षयोरस्माकश्च त्रयाणां वर्षाणां सम्पूर्णं संस्कृतभाषाप्रचारप्रगतिविवरणम् ।

इदानीं पर्यन्तं बालपरीक्षार्थिनां कृते पठनपाठनस्य काचित् समुचितव्यवस्था सुविधा च न स्त. । ते वराकाः स्वयमेव मत्सकाशाच्च अल्पाल्पसाहाय्यं लब्ध्वा यथाकथंचित् स्वस्व परीक्षायै प्रयतन्ते । अस्यामवस्थायां इमे उपर्युक्ताः परीक्षार्थिनामङ्काः अस्माकमुत्साहवर्धनायैव कल्पन्ते । यदि सर्वे नगरस्थाः संस्कृतज्ञाः सौहार्देन मिलित्वा संस्कृतभाषाप्रचाराय कामपि संयुक्तां योजनां स्वीकुर्युः अन्ये संस्कृतप्रेमिजनाश्च यथाशक्तिसहयोगं दद्युः तदा अधिकाधिको द्रुतगतिश्च संस्कृतभाषा प्रचार स्यादित्यत्र भवन्तः सर्वे प्रमाणम् ।

अयञ्च पुनरपरो महान् हर्षविषयो यत् स्वाध्यायमण्डलेन गीतावेदोपनिषदामपि प्रचाराय निम्नांकिताः परीक्षाः प्रचालिताः सन्ति—

गीतायां— (१) गीता परिचयः (२) गीता प्रवेशः (३) गीता रत्नम् (४) गीतालंकारः ।

वेदेषु— (१) वेद परिचयः (२) वेद प्रवेशः, (३) वेद प्राज्ञः (४) वेद विशारदः, (५) वेद पारंगतः, (६) वेदाचार्यः

उपनिषत्सु-(१) उपनिषत्परिचयः, (२) उपनिषत्प्रवेशः, (३) उपनिषत्प्राज्ञः, (४) उपनिषदलंकारः

संस्कृत साहित्यस्य अपि विशेषज्ञानार्थं साहित्यप्रवीण-साहित्यरत्न-साहित्याचार्य-पदवी परीक्षा प्रचालिताः सन्ति । आसां सर्वासां परीक्षाणां पूर्णविवरणं विवरणपत्रिकां च मत्सकाशात् लब्धुं शक्ष्यते । आसु परीक्षासु सर्वैः सुबुद्धिभिः स्वस्वपुत्रिपुत्राः उपवेशनाय प्रेरणीयाः स्वयमपि चावश्यं संस्कृतभाषाज्ञाने तत्प्रचारे च यत्नः करणीयः । ' संस्कृतभाषा कठिना ' इति तु महान् भ्रमः । वस्तुतः इयं भाषा स्वल्पायासेनैव बहुलाभाय भवति । प्रत्यक्षस्य प्रमाणं किम् ? स्वयमेव एतत्सत्यं प्रत्यक्षी कुर्वन्तु । प्रौढानां कृते अहमपि स्वकीयं एकवर्षीय संस्कृतभाषा-पाठ्यक्रमं शीघ्रातिशीघ्रं मुद्रितं कारयामि तेन च संस्कृताध्ययने अतीव सरलता संपत्स्यते । अस्तु,

सर्वेषां भवतां श्रीमतामुपस्थित्या सहयोगेन च मे परिश्रमोऽद्य सफलो जातः । केन प्रकारेण भवद्भ्यो धन्यवादान् ददामीति न जाने । भवतां कृपादृष्टिं लब्ध्वा सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि इति सर्वान् प्रति स्वकृतज्ञतां विज्ञापयामि । विशेषतश्च श्रीमतां स्वकीय प्रिन्सिपलमहोदयानां येषां कृपयाहमेतत्सर्वं कर्तुम पारयम् तथा च पण्डितप्रवराणां श्रीबालमुकुन्द शास्त्रिणां येऽस्य सम्मेलनस्य साभापत्यमङ्गीकृत्य कष्टमपि सहर्षं सुखमिव संवृण्वन्ति अहं सर्वथा अत्यन्तकृतज्ञोऽस्मि । स्वकीयानां संस्कृताध्यापकानां बन्धूनाञ्च सहयोगाय हृदयेन बहु आभारं मन्ये । भविष्यति अपि संस्कृतभाषायां तत्प्रचारे च स्वपरमानुरागो यथावत् संरक्षणीय इति विनम्रमभ्यर्थनम् । एषा च मम कामना-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, सर्वे जानन्तु संस्कृतम् ॥ इति

कथोपकथनम्

पात्राणि- सुबुद्धि शर्मा, सुबलवर्मा, सुधन गुप्तः ।
समयः- सायंकालः

सुबुद्धिशर्मा— (प्रविश्य, इतस्ततो विलोक्य) कीदृङ् मनोहरः सायङ्कालः । निर्मलं नभः बहुविधवर्णैः जल्पतीव अनवरतम् । विरलविरला मेघा रंगविरङ्गान् धारयित्वा चिन्वन्तीव चिन्मयम् । विहायसा गच्छन्तो विहङ्गाः सस्नेहं गायन्तीव गुणगानान् परमेश्वरस्य । फलपुष्पपल्लवसंवलिता वृक्षा हरित्स्पर्णेन पुलकिता इव शोभन्ते । रक्ता सूर्यकिरणा भूतानि राम रागेण रञ्जयन्तो राजन्ते । हरित हरित तृणानि धारयन्ती धरा अपि स्मारं स्मारं परमेश्वरस्य अनुभवतीव रोमाञ्चम् । सर्वा दिशोऽपि प्रसन्नाः संजाताः ! अहो ! सत्यमेव इदानीं अस्य चराचरस्य जगतो जन्मस्थितिसंहारकारणस्य परमकारुणि कस्य परमेश्वरस्य परमैश्वर्यं कुशीलवस्य कलाकौशलमिव सर्वेषां अस्माकं नेत्राणां पुरतो नरीनृत्यति । अथवा—

वेद ब्राह्मण दर्शनोपनिषदो गायन्ति यं सन्ततम् ।
साहित्योदधिपारगाः सुकवयो यं वर्णयन्त्यादरम् ।

नित्यं ध्यानरता विचारपटवश्चित्तेऽनुमार्गन्ति यम्। धन्यास्ति नरपुंगवास्तामिह ये ध्यायन्ति परमेश्वरम्॥

(इति पठित्वा चक्षुषी पिधाय ध्यानावस्थित इव हस्तौ संयोज्य क्षणं स्थितः)

सुबलवर्मा— (प्रविश्य) भो भो मित्र सुबुद्धि शर्मन् ! किं भो ! इदानीं सकल जगदाधारस्य ध्यानेऽवस्थित इव संलक्ष्यसे ?

सुबुद्धि शर्मा— (चक्षुषी उन्मील्य) स्वागतं, मित्र सुबलवर्मन् ! स्वागतम् । सत्यं भणति भवान् । अधुनाहं सायं-कालस्य शोभनीयतां दृष्ट्वा महतो महीयसः अणोरणीयसः परमेश्वरस्य ध्याने निमग्नस्तिष्ठामि । स तु सर्वैः सर्वदोपासनीयः ।

सुबल वर्मा— युक्तमेवैतत् । किन्तु⋯⋯ ।

सुबुद्धि शर्मा— किन्तु इति किं मित्र ?

सुबल वर्मा— साम्प्रतं बहवो विद्वान्सः परमेश्वरस्य सत्तायामेव न विश्वसन्ति । तस्याभावे ते बहून् परिपुष्टतर्कान् वितन्वन्ति । तेषां मतेऽस्मिन् संसारे ईश्वरस्य धर्मस्य च काचिदावश्यकता नास्ति । ते प्रचारयन्ति–स्वयंचलोऽयं संसार इति ।

सुबुद्धि शर्मा— मित्रवर, सकलजगदाधारस्य परमेश्वरस्य सत्तायां सन्देहस्तेषामेव भवति येषां बुद्धिः पाश्चात्यसभ्यताया आडम्बरे चमत्कृता वर्तते; ये च प्राचीन भारतगौरवं विस्मृत्य अनादृत्य च भारतीय संस्कृतिमधुनापि मनसा गौराङ्गप्रभूणा प्रभुतां स्वीकुर्वन्ते. सूर्योदयं द्रष्टुकामाः पश्चिमदिशि एवावलोकयन्ति ।

सुबल वर्मा— साधूक्तं भवद्भिः यत् प्राचीनभारत-गौरवं विस्मृत्य अनादृत्य च भारतीय संस्कृतिं जनाः परमेश्वर सत्ताया संदिहन्ति । परन्तु मित्र ! प्राचीनभारतगौरवं भारतीय संस्कृतिं च केनोपायेन जानीयुः जनाः ? किं न विदितं भवताम्-य इतिहास इदानीं विद्यालयेषु पाठ्यते तस्मिन् तु पुरातन भारतस्य भारतीयानाञ्च दुर्दशा, दरिद्रता अज्ञानतां चैव उपवर्णयन्ति इतिहासविदः ।

सुबुद्धि शर्मा— सत्यमेव कथयति भवान् । य इतिहास इदानीं विद्यालयेषु पाठ्यते स पक्षपातोपहृतहृदयैः सत्यमपलपाद्भिः विदेशीयैः एवं विधो रचितः । तेषामनुगामिभिः देवानांप्रियै राङ्गलदासैः चक्षुषी मीलयित्वा स तथाविध एवाङ्गीकृतः । तत्र प्राचीन भारतवर्णने सत्यस्य अणुमात्रमपि नोपलभ्यते ।

सुबल वर्मा- किमुक्तम् ? तत्र प्राचीनि भारतवर्णने सत्यस्याणुमात्रमपि नोपलभ्यते इति ।

सुबुद्धि शर्मा— अथ किम् ।

सुबल वर्मा- तदा केनोपायेन जनाः पुरातन भारतस्य विषये सत्यज्ञानं लब्धुं शक्नुवन्ति ?

सुबुद्धि शर्मा- अतीव सरलोपायः ।

सुबल वर्मा— अतीव सरलोपायः ?

सुबुद्धि शर्मा- बाढम् !

सुबल वर्मा- स कः ?

सुबुद्धि शर्मा- श्रूयताम्–ये केचन जनाः प्राचीन-भारतस्य वास्तविकं गौरवं भारतीय संस्कृतेश्च सत्स्वरूपं ज्ञातुमिच्छन्ति, ये च स्वपूर्वजानां सत्येतिहासं ज्ञातुकामास्तैर्वेदादि शास्त्राणि रामायणमहाभारतगीतादिपावनपुस्तकानि अवश्यं पठितव्यानि वर्तन्ते । अपठित्वा एतान् सद्ग्रन्थान् नराः भारतीय संस्कृतेः स्वरूपं कदापि नावगन्तुं शक्नुवन्ति ?

सुबल वर्मा— एतत्सत्यम् । किन्तु, एते सर्वे ग्रन्थाः संस्कृतभाषायां लिखिताः सन्ति । तान् असंस्कृतज्ञाः जनाः कथं पठेयुः ?

सुबुद्धि शर्मा— सफलमुत्तरम् । सर्वे जनाः संस्कृतज्ञाः भवेयुः ।

सुबल वर्मा— किमुक्तम्, सर्वे जनाः संस्कृतज्ञाः भवेयुः ?

सुबुद्धि शर्मा- अथ किम् ।

सुबल वर्मा— किन्तु⋯ ⋯ किन्तु मित्र, संस्कृतभाषा अतीव कठिना भाषा अस्ति । संस्कृताध्ययनं सर्वेषां सुकरं नास्ति ।

सुबुद्धि शर्मा— मित्रवर, अयं तु महान् भ्रमः । वस्तुतः संस्कृतभाषा अतीव सरला, वैज्ञानिका पूर्णा च भाषा यत्र कठिनताया लेशोऽपि न विद्यते । संस्कृतशिक्षकाणा आलस्यं एवात्र कठिनतायाः कारणम् । यदि संस्कृताध्यापकाः सपरिश्रमं रुचिं पूर्वकम् संस्कृतभाषां पाठयेयुः तर्हि संस्कृतभाषा सर्वासु भाषासु सुगमा, सरला च सम्पद्येत इत्यत्र न कश्चित् सन्देहः ।

सुबल वर्मा- आश्चर्यमिव जल्पसि भो ! सुगमा संस्कृतभाषा इति सहसा न विश्वसिति मे हृदयम् ।

सुबुद्धि शर्मा— मित्र, न केवलं सुगमा, प्रत्युत सर्वासु विश्वभाषासु सुगमतमा वर्तते । यदि नास्ति विश्वासः, आगच्छतु, चलतु भवान् मया सार्धम् । डी. ए. वी. कालेज भूमौ आयोजितं संस्कृत सम्मेलनं द्रष्टुं गच्छावः ।

सुबल वर्मा— अवश्यं अवश्यं ! आवां तत्र अवश्यमेव

चलावः। न जाने सुधन गुप्तः इदानीं क्वास्ते। सोऽपि अत्र भवेत् चेद्वरम् स्यात। चलतु;

(चलितुं प्रवृत्तौ)

सुधन गुप्तः- (प्रविश्य, आकार्य) श्रूयतां, श्रूयतां ! क्व गच्छतो भवन्तौ ? अहमपि भवद्भ्यां सह चलामि।

सुबल वर्मा— आगच्छतु मित्र, सुधन गुप्त, आगच्छतु ! दीर्घायु भवान् !

सुधन गुप्तः— कथम् ?

सुबल वर्मा— इदानीमेव स्मृतो भवान्। आवां संस्कृत-सम्मेलनं द्रष्टुं गच्छावः।

सुधन गुप्तः— सुन्दरं। तत्र किं भविष्यति ?

सुबल वर्मा- अस्मिन् विषये श्रीसुबुद्धि शर्मा आवां सूचयिष्यति।

सुधन गुप्तः— किम्भो मित्र ! सुबुद्धि शर्मन् ! ददातु संक्षिप्त परिचयं सम्मेलनस्य।

सुबुद्धि शर्मा- किं भवता निमन्त्रणं न प्राप्तम् ?

सुधन गुप्तः- मित्र, अहं अधुना विदेशाद् आगच्छामि। अतः गृहस्य विशेषसमाचारान् न जानामि। निमन्त्रणं गृहे आगतं भवेत्।

सुबुद्धि शर्मा— तर्हि श्रूयताम्-

अद्य सायंकाले चतुर्वादन वेलातः संस्कृतसम्मेलनस्य प्रारंभो भविष्यति। तच्च डी. ए. वी. कालेजस्य संस्कृतपरिषदस्तत्वावधाने संस्कृतभाषा प्रचार समित्या आयोजितम् वर्तते। श्रीमन्तो बालमुकुन्दशास्त्रिणः पण्डितप्रवरास्तत्र सभापतिपदं अलंकरिष्यन्ति। अस्य सम्मेलनस्य इयं विशेषता यत् सर्वः कार्यक्रमः सरलसंस्कृतभाषाया एव भविष्यति।

सुधन गुप्तः- तदा तु तत्र अवश्य गन्तव्यम्। चलतु, चलामः।

सुबल वर्मा— चलतु चलावः।

सुबुद्धि शर्मा- चलतु, चलामि।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

परीक्षा विभाग

आवश्यक सूचनायें

१- ३१ जनवरी तथा १ फरवरी १९५३ ई. को होनेवाली संस्कृतभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंका परीक्षा फल ता० २४ मार्च १९५३ ई. को प्रकाशित होगा।

२- उक्त तिथिसे पूर्व परीक्षा-फल विषयक कोई पत्रव्यवहार न किया जाय।

३- परीक्षा फल समाचार पत्रोंमें भी प्रकाशित किया जाएगा।

४- प्रत्येक केन्द्रमें उस केन्द्रका सम्पूर्ण परीक्षाफल श्री केन्द्रव्यवस्थापक महोदयके पास भेजा जाएगा।

५- केन्द्रव्यवस्थापक महानुभावोंसे निवेदन है कि वे अपने केन्द्रका परीक्षाफल ता० २४ मार्चको प्रातः ८ बजे प्रकाशित करें।

हैद्राबाद राज्यमें मेरे १५ दिन

(ले० श्री. महेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर)

सन् १९३९ ई. के आर्य सत्याग्रहके पश्चात् इस राज्यमें घूमने की बडी इच्छा थी। इसमें अनेक कारण थे। हृदय आर्य जगत्के उस उमङ्गभरे वातावरणको देखनेके लिये उत्सुक था जिसका अनुभव आजसे एक युग पूर्व हुआ था। उन कार्यकर्ताओंसे मिलनेकी विशेष आकांक्षा थी जिनके कार्योंसे वहाँ को आर्य समाज एक जीवित संस्थाके रूपमें दिखाई पडती है।

हैद्राबाद राज्यके आर्योंका जीवन बलिदान-परम्पराओंसे ओत-प्रोत वीरोंका जीवन है। कष्टों और यातनाओंके धधकते हुए रेगीस्तानमें बडी लम्बी लम्बी यात्रायें उन्होंने की है। दुःख और दारिद्र्यके जीवनको उन्होंने जानबूझकर अपनाया है। हंसते हसते मृत्युका आलिङ्गन किया है किन्तु अन्याय तथा अत्याचारोंके विरुद्ध इस प्रकार अपना सर्वस्व समर्पण करके भी उनके मुंहसे कभी आह तक न निकली।

आर्य समाज एक ऐसी शक्ति है जिसने उत्पीडित एवं त्रस्त जनसमुदायकी रक्षा की है, उसे डूबते हुए बचाया है और ऊपर उठाया है। धर्मान्ध अकबर हैदरी और नबाब यार-जंगकी आंधीके समय तथा रजाकारी दुर्दैवके तूफानके समय आर्य समाजने वहाँ जो कार्य किया है वह इतिहासके पृष्ठों-पर गौरवसे लिखे जानेवाला अध्याय है। स्वेच्छाचार और अत्याचारके उन दिनोंमें स्त्रियोंके सतीत्वकी और हिन्दुओंके जन धनकी रक्षा आर्य समाजने ही की। अत्याचारियोंको अपने कदम बढानेसे पूर्व यह सोच लेना पडता था कि यहाँ कहीं आर्य समाजका मिशन तो काम नहीं कर रहा है। सच तो यह है कि आज भी बडे बडे धनपतियों एवं दिग्गज धर्माधिकारियों तक को आर्य समाजके इस कार्यके लिये सदैव कृतज्ञ होना चाहिये।

किंतु कालचक्रके अद्भुत परिवर्तनके साथ आर्यसमाजका भी स्वरूप कुछ इस प्रकारसे आज रूपान्तरित हुआ दिखाई देता है कि जिसे देखकर हृदयको एक ठेस पहुँचती है और बुद्धि स्तम्भितसी हो जाती है। राज्य में आज कांग्रेसीशासन स्थापित होकर वह अपना कार्य कर रहा है। राज्यसे बाहर का संसार अपनी आंखोंसे केवल यही देख पारहा है कि हैद्राबाद राज्यमें कांग्रेसका अपना ही ऐसा सुदृढ एवं विशाल संगठन है जो इस मन्त्रीमण्डलकी सत्ताको सहारा दिये हुए है। किन्तु वह यह नहीं देख पारहा है कि इस दृश्यमान विशाल वट वृक्षकी सुदीर्घ एवं सुदृढ जडे कौनसी हैं। कुछ ऐसा प्रतीत होरहा है कि अपने प्रकाशसे चमकने-वाले और अन्धकारको दूर करनेवाले प्रभाकर पर बादल छा गये हों और धरतीको विशाल सीमापर फैलनेवाला उसका प्रकाश धीमा पड गया हो। कोई भी संस्था पदारूढ हो जाय तो उससे क्या। पदारूढ होना या राजकीय सत्ता प्राप्त कर लेना कोई स्थायी कार्य नहीं है। राष्ट्रकी सेवा करनेका थोडेसे समयके लिये यह तो एक अवसर मिल जाता है। जनता ही इस अवसरको देनेवाली एक शक्ति है। वास्तविक स्थिर एवं स्थायी शक्ति तो जनता है। इस प्रकार हैद्राबाद राज्यमें आर्य समाजने जो कार्य किया है वह स्थायित्वकी दृष्टिसे किया है और उसका यह कार्य तीन अथवा पांच वर्षोंकी किसी छोटीसी अवधितक सीमित रहने वाला न होकर चिरस्थायी है।

असन्तोष क्यों ?

कुछ लोगोंमें इस प्रकार का एक असन्तोष देखनेमें आया कि 'हमारे नेता और बहुतसे अच्छे कार्यकर्ता मन्त्रि-मण्डल एवं धारासभामें चले गये हैं और इसका परिणाम यह हुआ है कि आर्य समाजका कार्य शिथिल होता जा रहा है।'

भारतवर्ष व्यक्ति पूजक रहा है और यही कारण है कि किसी व्यक्ति विशेष की उपस्थितिमें तो उसमें जागृति आ जाती है और उसके चले जानेपर वह पुनः सो जाता है। लोग यह समझते हैं कि किन्हीं व्यक्तियोंके रहनेपर ही हममें जागृति रह सकती है और उसके बिना चेतना मर जाती है; किन्तु यह कोई स्वस्थ अवस्था या योग्य समझ नहीं है। हमें

अपना निर्माण स्वयं करना है। अपनेको इतना पूर्ण बना लेना है कि हम स्वयं ही अपने उद्देश्यकी ओर अग्रसर होते चले जांय। यदि हमने स्वयंको ऐसा नहीं बनाया है तो उसका अर्थ यह है कि हममें आत्मनिर्भरता नहीं है और यही कारण है कि हम स्वयंकी कमजोरीपर परदा डालनेके लिये दूसरोंके प्रति असन्तोष व्यक्त किया करते हैं।

ऐसे समय परिस्थितियोंकी विवशताको कार्य न कर सकनेका कारण बताया जाता है। किन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि इस प्रकार परिस्थितियोंकी विवशताको व्यक्त करना स्वयंकी निर्बलता और असमर्थताको ही व्यक्त करना होता है।

मन्त्रिमण्डलमें पहुँच जाने या धारासभाके सदस्य होजानेपर भी तो राष्ट्रसेवाका एक अवसर ही प्राप्त होता है। उस अवसरका उपयोग करनेमा कोई उद्देश्यभ्रष्टता तो नहीं मानी जा सकती? महत्त्वकी बात तो यह है कि आर्यसमाजके नेता वहाँ पहुँचकर अपने आर्यत्वको उठाकर एक ओर तो नहीं रख देते? वे सर्वप्रथम अपनेको आर्य और उसके पश्चात् सबकुछ माननेमें यदि भूल करते हैं तो सचमुच वे अपनेको गिरा लेते हैं। यदि वे इस प्रकार उद्देश्य-भ्रष्ट होते हैं तो जनताका अथवा आर्य जगत्का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह उन्हें अपने मार्गसे हटा दे।

आर्यजगत् यह क्यों भूलता जारहा है कि आजके सत्ताधीशोंको उनके पदोंपर आरूढ करानेवाला वह स्वयं है और थोडेसे समयके लिये उसने किन्हीं व्यक्तियोंको राज्यकी सेवाका अवसर दिया है। यदि वे अपने कर्तव्योंके प्रति वफादारीका वर्ताव नहीं करते तो वे भविष्यमें इन अधिकारोंको भी नहीं प्राप्त कर सकते। यह तो एक थोडेसे समयकी बात है, चिरस्थायी तो नहीं?

आर्य समाजके सामने तो मानव समाजको और उसके मानसिक धरातलको ऊपर उठानेका विशाल कार्यक्रम है। केवल व्याख्यानों द्वारा अथवा उद्देश्योंके उद्घोषित अक्षरों द्वारा ही उसने अपने सदुद्देश्य व्यक्त नहीं किये हैं; अपितु अपने जीवनको इसके लिये सम्पूर्णरूपसे लगा दिया है। आर्य समाजने केवल बातें नहीं बनाई हैं; अपितु रचनात्मक कार्य किया है।

आज भी उसके सामने महान् कार्यक्षेत्र पडा हुआ है। हैद्राबाद राज्यमें आज भी ईसाई और मुस्लिम मिशनरीका कार्य बहुत जोरोंसे चल रहा है। उनका प्रचार जिस दृढता और निश्चितताके साथ होरहा है उसे देखकर हमें अपने लिये एक बहुत भयानक खतरा मानना चाहिये। प्रतिदिन भारतमें आज १२५ ईसाई बनाये जाते हैं और करोडों रुपयेका व्यय ईसाई धर्मके प्रचारपर व्यय किया जा रहा है। इस सारी मशीनको चलानेवाले हजारों वे नवयुवक और युवतियाँ भी हैं जिन्होंने अपने उठ-उभरते हुए जीवन इस कार्यके लिये झोंक दिये हैं।

मुस्लिम मिशनरीके लोग भी प्रगट और अप्रगट रूपमें अपना प्रचार कर रहे हैं। राष्ट्रका एक हिस्सा उन्होंने कब्जा लिया है। एक ऐसी विरोधी भावना उनके हृदयमें जमी हुई है कि जिसके कारण वे चैनसे नहीं बैठते। रात-दिन इस्लामके प्रचारके लिये जुटे रहते हैं। अपने धर्मकी जडें अपने जीवनको गलाकर सींचते रहते हैं।

इस प्रकारकी यह दुधारी तलवार आज हिन्दुत्व या आर्यत्वके गलेपर पडती जा रही है। इसका कारण यह भी है कि हम अपनी परम्परागत दूषित विचारधाराओंसे आज भी चिपके हुए हैं। हमारी दृष्टि घरकी चार दीवारीके अन्दर ही बंद है। वह घरसे बाहर देखती ही नहीं। वह यह जानना ही नहीं चाहती कि घरसे बाहर चारों ओर क्या होरहा है। बाहरके संसारमें क्या होरहा है और मेरे घरकी दीवारोंमें कौनसे शत्रु सेंध लगाकर उसे नष्ट करनेका उपक्रम कर रहे है।

आर्य समाजके प्रत्येक व्यक्तिके सामने ईसाई, मुसलमान और सामाजिक बुराईयोंकी यह परम्परा खडी हुई है। इनका सामना करना है। इस सामनेके लिये हममें ईसाइयोंसे अधिक त्याग, लगन और चातुर्यकी आवश्यकता है, मुसलमानोंसे अधिक भावुकता, एकता और विश्वास अपेक्षित हैं तथा सामाजिक सुधारके लिये अधिकसे अधिक सहिष्णुता दृढता और आत्मनिर्भरता आवश्यक है। लगभग ८० वर्षके जीवनमें आर्य समाजने जो कुछ कार्य किया है उसीको और अधिक परिमार्जित रूपसे करना है और अपनी उन्नतिके साथ साथ राष्ट्रको भी उन्नत करना है। आर्य समाजने जिन

जिन कार्योंको अपने हाथोंमें लिया था उसे आज भी जारी रखना है।

१- वेदोंका अध्ययन अध्यापन। २- वैदिक जीवनका निर्माण (इसके अन्तर्गत गुणकर्म स्वभावानुसार जाति और वर्णकी मान्यता, सन्ध्योपासना एवं अग्नि होत्रका प्रचार, संस्कारोंका प्रचलन, आश्रम व्यवस्थाकी स्थापना भी है)

३- समाज सेवा (जिसके अन्तर्गत छुआछूतको मिटाना, शुद्धि, अपहृत स्त्रियोंको योग्य स्थान, चिकित्सालयोंकी स्थापना एवं गुरुकुलोंको चलानेका कार्य है)

उपर्युक्त जिन बातोंको आर्य समाजने अपने जीवनका उद्देश्य बनाया था उन्हींको आज पुनः विशेष उत्साह और दृढ़ताके साथ प्रारम्भ कर देना है। मैंने अधिकांश आर्य सज्जनोंको यह कहते सुना है कि 'अन्य संस्थाओंकी तुलनामें आज अपने लिये क्या कार्यक्रम बनाने चाहिये?' 'आर्य समाजके पास आज ऐसा कार्यक्रम ही नहीं है।' यह तो एक ऐसी बात है जैसे कि एक खूब अच्छा स्वस्थ व्यक्ति तन्द्रित होकर अपनेको क्षयग्रस्त मान बैठे। हमारे लिये प्रतिदिन आर्य समाजका कार्यक्रम विद्यमान है। आप प्रातः उठते है और सूर्योदयतक अग्निहोत्रादि कर्मसे निवृत्त होकर थोड़ा बहुत वेदोंका अध्ययन यदि कर लेते हैं तो यही एक अच्छा कार्यक्रम आपके लिये है। यह अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप यह नहीं कर पाते तो इसका अर्थ यह है कि आर्य समाजके मूलभूत एवं प्रथम कार्यक्रमको भी आप नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार आपका आर्यत्वका स्वरूप सत्य न होकर विडम्बनामात्र ही है। इसी प्रकार अपने गृहस्थी जीवनमें संस्कारोंको स्थान देना और बालकोंको गुरुकुलोंमें भेजना भी एक रचनात्मक कार्यक्रम ही है। इस प्रकार यदि हम स्वयं अपनेसे और अपने घरसे ही आर्य समाजका कार्यक्रम प्रारम्भ करें। फिर हम देखेंगे कि इस सत्यका प्रकाश किस तेजस्वितासे बाहर फूटता है और इसके प्रकाशमें राष्ट्रका अन्धकार दूर होकर किस प्रकार उसकी काया पलट होती है।

हैद्राबादसे औरङ्गाबाद तकके अपने १५ दिनके प्रवासमें मैंने यह प्रयत्न किया कि वहाँकी आर्यसमाजकी संस्थाओंका अवलोकन करूं एवं नये- पुराने कार्यकर्ताओंसे मिलूं। इस सिलसिलेमें मैंने गुरुकुल घटकेश्वर, कन्या गुरुकुल बेगम पेठ, प्रतिनिधि सभाका कार्यालय, सुल्तान बाजार, निज़ामाबाद, नान्देड, परभणी, मानवत, जालना और औरङ्गाबादके समाज मन्दिर एवं उनमें चलनेवाली व्यायमशालाओं तथा कन्या पाठशालाओंको देखा। जिन विशिष्ट कार्यकर्ताओंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त कर सका उनमें श्रद्धास्पद श्री धारेश्वरजी, श्री लक्ष्मी शंकरजी मिश्रार्य, श्री पं. नरेन्द्रजी, श्री व्यासजी, श्री मनोहरलालजी श्री सुशीला देवीजी तथा उपर्युक्त आर्य समाजोंके पदाधिकारी एवं उत्साही सदस्य थे।

एक भव्य स्वप्न

उपर्युक्त संस्थाओं एवं आदरणीय महानुभावोंके दर्शन करनेपर एक बात जो हृदयमें समाती चली गई वह यह थी कि इस राज्यका आर्यपरिवार अपनी संस्थाके जिस स्वरूपका निर्माण करनेमें संलग्न है वह निःसन्देह उसके जीवनका एक भव्य स्वप्न है।

गुरुकुल घटकेश्वर हैद्राबाद राज्यकी एक ऐसी संस्था है जिसके विकास और स्थायित्वपर वहाँकी आर्य जनताको सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये। यह तो एक ऐसी स्रोतस्विनी है जिससे उस वाटिकाका सिंचन होगा जिसमें शरीर और आत्माको संतुष्ट करनेवाले अमृतफल लगते हैं। यदि ऐसी संस्था हैद्राबाद जैसे क्षेत्रमें न फली फूली तो आर्य जगत्‌के लिये यह एक दुर्भाग्यकी बात होगी। मैंने उस विशाल भूमिके जब दर्शन किये तो उसके साथ ही जटाधारी, ऋषितुल्य और तेजस्वी उस संस्थापकके भी दर्शन हुए जिसकी आंखोंमें भविष्यके सुन्दर स्वप्न एक उन्मत्त आशा लिये नाच रहे थे। किन्तु यह देखकर चिन्ता हुई कि संस्थाके पास आज अच्छे कार्यकर्ता नहीं हैं तथा उसपर लगभग पचास हजार रु. का कर्ज है। एक युग वह था जब ऋषि आश्रमोंमें बड़े बड़े सम्राट् पैदल पहुँचते थे और सम्पूर्ण राज्य उनके चरणोंपर अर्पित कर देने तकको प्रस्तुत रहते थे; किन्तु उन ऋषियोंके वे गुरुकुल भी उस समय इतने सम्पन्न रहते थे कि राजाओंके राज्य भी उनके सामने फीके पड़ जाते थे। वसिष्ठके गुरुकुलका वैभव देखकर ही विश्वामित्रने राजा होते हुए भी उसे लूटनेका प्रयत्न किया था। यह उदाहरण इस बातको भी सिद्ध

करता है कि उस युगके व्यक्ति गुरुकुलीय शिक्षाको कितना आधिक महत्व देते थे। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीको जीवित रखना जनताके जीवन मरणका प्रश्न है और गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली भारतकी वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली है! किन्तु आज इतने बडे क्षेत्रमें एक गुरुकुलका चलना भी दूभर होरहा है। क्या यह हमारे लिये सन्तोषकी बात है ?

जिस रूपमें आज यह गुरुकुल अवस्थित है उसे देखकर कोई भी निःसन्देह यह कह सकता है कि इसके पीछे एक बहुत बडा पुरुषार्थ निहित है। लाखोंकी सम्पत्ति वहाँ जुटाई गई है। मुद्रणालय, बिजली, कुएँ, वाटिकायें, क्रीडाङ्गण, यज्ञशाला, स्नानागार, औषधालय आदिमें कितना व्यय हुआ होगा! छात्रोंकी पाठशाला निवास-स्थान एवं भोजनशालायें भी अच्छी विस्तृत रूपमें बनाई गई हैं। किन्तु इस सम्पूर्ण भव्य स्वरूपके पीछे एक ऐसी उदासीनता उत्पन्न होती जारही है जिसे देखकर यह भयसा होने लगता है कि इसकी मनहूस काली छाया कहीं इसकी भव्यता और सुन्दरता पर इस तरह न छा जाय कि इसका सारा स्वरूप ही विकृत होजाये।

किन्तु

क्या आर्यजनता ऐसा होने देगी ? ऋषिसत्तम व्यासजीकी तपस्या क्या इस तरह व्यर्थ चली जाएगी ? इसका उत्तर मैं नहीं, आर्यजनता और उसके हृदयसम्राट् वे नेता ही देंगे जो अभ्युदय और निःश्रेयसको प्राप्त कराने वाली उस अक्षय और भव्य सम्पत्तिको जुटानेमें लगे हुए हैं और सच्चे अर्थोंमें आर्य हैं। अन्यथा मुझे तो विश्वास है कि जिस तपस्वीने इस वट वृक्षका बीजारोपण किया है वह अपना रक्तदान करके भी इसे अपने जीतेजी तो अवश्य ही पल्लवित रखेगा। मैं यह भी भली प्रकार जानता हूं कि इस कठोर कर्मनिष्ठ व्यक्तिने आजतक जो संकल्प किया उसे पूरा किया है और इसीलिये यह विश्वास और भी दृढ हो जाता है कि एक दिन गुरुकुलके इस आर्थिक संकटको भी वह अवश्य मिटा सकेगा।

कन्या गुरुकुल

बेगम पेठमें भी इसी प्रकार एक अन्य आदर्श संस्थाको देखनेका अवसर मिला। यह संस्था प्रतिदिन उन्नत होती चली जारही है। अपने जीवनके लगभग २५ वर्षोंमें इस संस्थाने सन्तोषजनक प्रगति की है। स्त्रीशिक्षाके क्षेत्रमें इस संस्थाने हैद्राबादमें अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। संस्थाके संचालक श्रद्धेय मोहनशंकरजी ने एक तपस्वीकी भांति अपना सम्पूर्ण जीवन संस्थाकी उन्नतिके लिये लगा दिया है और साथ ही इसकी संस्थापिका आदर्श माता श्री तारादेवीजीका तो एक एक क्षण कन्या गुरुकुलकी उन्नतिमें बीत रहा है। श्रीमती सुशीला देवजी ने आचार्याके रूपमें यहाँके शिक्षा प्रबन्धको बडी योग्यतासे सम्हाल रखा है। हमें आशा है कि इस निष्ठावान, भावुक एवं कर्मठ परिवारके द्वारा यह संस्था खूब चमकेगी।

आदर्श विभूति

हैद्राबाद राज्यमें आज तीनसौसे ऊपर आर्य समाजें हैं। गुरुकुलोंके अतिरिक्त अन्य पांच सात बडे बडे शिक्षणालय भी हैं, जिनका नियन्त्रण प्रतिनिधिकी शिक्षा समिति द्वारा होता है। लगभग सौ कन्याशालायें एवं रात्रि पाठशालायें चलती हैं। अधिकांश समाजोंमें व्यायामशालायें चलती हैं। इस प्रकार आत्मिक और शारीरिक उन्नतिका यह अखण्ड सत्र इस राज्यमें चल रहा है। बडे बडे सम्मेलन एवं समारोह समय समयपर होते रहते हैं। तीव्रसे तीव्रतर आन्दोलनोंके अवसर भी इसके जीवनमें अनेक बार आचुके हैं; जिनमें पडकर हैद्राबादका आर्य जगत् सदैव कुंदनकी तरह उजला बनकर निकला है। उत्सव होते हैं और जुलूस निकलते हैं तो एक जोशके साथ, एक उमङ्गके साथ और एक अद्भुत अनुशासनके अन्दर। युवकोंमें तो क्या स्त्रियों और वृद्धोंमें भी आर्यत्वका वह अभिमान दिखाई पडता है कि आप देखते ही रह जांय। सारीकी सारी मशीन इस प्रकार अपनेमें पूर्ण है कि किसीको अंगुली उठानेकी हिम्मत ही नहीं हो सकती। एक शब्द और एक इशारा उसके लिये काफी है। फिर देखिये कि उसमें कितनी हिम्मत और शक्ति है। लेकिन इस सम्पूर्ण भव्य एवं उग्र वातावरणके पीछे जो शक्ति काम कर रही है, जो व्यक्तित्व रमा हुआ है और जिसका जीवन गल गलकर ओतप्रोत हो रहा है उसके दर्शन भी तो कीजिये। खादीके श्वेत परिधानोंसे आवृत, सादगीकी प्रतिमूर्ति किसी विनयावनत व्यक्तिकी कल्पना आपके हृदयमें यदि उतरे तो

उसका साकार स्वरूप आप श्रद्धास्पद श्री पं. नरेन्द्रजीके रूपमें देख सकते हैं। यही वह व्यक्तित्व हैं जिसके पीछे वहाँका आर्य जगत् ' उत्तिष्ठत, जाग्रत ' की वेदवाणीको अपने जीवनमें ढाल रहा है और ' कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ' के स्वर्णिम स्वप्न अपने हृदयमें संजो रहा है।

सचमुच श्री पं. नरेन्द्रजी उन आदर्श विभूतियोंमेंसे हैं जो त्यागको अपने जीवनका सहारा बनाते हैं, संयमको अपना आराध्य मानते हैं और जनसेवाके आनन्दको अपना सर्वस्व ! कोई भी उनसे मिलकर एकदम या प्रथमवार हो उनके व्यक्तित्वको नहीं आंक सकता। उनके व्यक्तित्वको आंकनेके लिये आपको वहाँके शतशत जनसमुदायके हृदयोंमें विराजित श्रद्धेय पंडित नरेन्द्रजीको देखना होगा। उनके अतीतका अवलोकन करनेके लिये आपको हैद्राबाद राज्यके आर्य समाजके उस रक्तरंजित गौरवमय इतिहासको देखना होगा, जिसपर सारे भारतको अभिमान है। एक दृष्टिमें या एक भेंटमें आप पं. नरेन्द्रजीको कभी भी न देख सकेंगे। मैंने देखा कि इस आदर्श विभूतिके नेत्रोंमें वह ज्योति चमक रही है जो अन्याय अथवा असत्यको जलाकर राख कर दे सकती है। एक मनस्विता और आत्मविश्वासकी आभा इस युवक हृदय पुरुषके नेत्रोंमें कोई भी देख सकता है।

आर्य सत्याग्रहके दिनोंमें-जब मैं गुरुकुल ज्वालापुरमें पढता ही था- गुलबर्गा, हैद्राबाद और वरंगलकी जेलोंमें जब मैं रियासतके आर्यसत्याग्रहियोंके मुखसे पं. नरेन्द्रजी के वक्तृत्वका और उनके हिम्मतभरे कार्योंका वर्णन सुनता तो मुझे एक गौरवमय विस्मय होता। मैं सोचता कि न जाने कब ऐसे आर्य पुरुषसे भेंट हो सकेगी और आज जब मैं राज्यके अनेक स्थानोंमें घूमा तब भी जनताजनार्दनके हृदयोंमें समासीन इस विभूतिको उतनी ही श्रद्धासे पूजित हुआ देखकर स्वयं भी श्रद्धासे झुक गया। शब्दोंके सीमित संग्रहको लेकर इस विषयमें अधिकसे अधिक लिखना भी व्यर्थ होगा; क्योंकि ससीमसे असीमका वर्णन सदैव अधूरा ही रहेगा।

भविष्यके विषयमें किसी प्रकारकी घोषणा करना बुद्धिमत्ता न होगी। किन्तु एक बात विशेष रूपसे मैंने अपने इस दौरेके समय अनुभव की और वह यह थी कि श्रद्धेय पं. जी जब अपना ध्यान धारासभाके तथा कांग्रेसके कार्योंकी ओरसे हटाकर पुनः आर्य समाजकी ओर लगानेको प्रस्तुत हैं। वे फिरसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर आर्य समाजका कार्य करनेको व्यग्र दीखते हैं; क्योंकि उन्हींके मुखार विन्दसे मैंने यह सुना है कि ' लोग स्टेट कांग्रसके प्रधानके लिये मुझे खडा करना चाहते है; किन्तु यदि मैं उधर लग गया तो समाजका क्या होगा ? ' ' मैंने प्रधान पदके प्रार्थनापत्र आदि फाडकर फेंक दिये हैं ' ' अब तो मुझे समाजकी ओर ही पूरा ध्यान देना है। ' इन शब्दोंको सुनकर या पढकर राज्यके उन आर्य जनोंको अवश्य सान्त्वना मिलेगी जो अपने इस नेताको धारासभाके कार्योंमें व्यग्र देखकर चिन्तित थे।

दूसरे एक युवक हृदय जिन महानुभावसे मिलनेका मुझे अवसर प्राप्त हुआ वे थे श्री मनोहरलालजी। जब मैंने उनके जीवनका इतिवृत्त सुना तो बडा विस्मय हुआ। जीवनको एक पत्थरको चट्टान बनाकर आपत्तियोंके कठिन आघातोंको उन्होंने सहन किया। दरिद्रताकी आंधीका सामना करनेपर भी आज उन्होंने अपना जीवन फिरसे निर्माण कर लिया है। जीवनमें इतने बडे उतार चढाव सहकर भी यदि कोई मुस्करा सकते हैं तो उनमें आपको प्रथमता दी जानी चाहिये। आज आप राज्यकी प्रतिनिधि सभाके मन्त्री हैं। आपके सुयोग्य नेतृत्वमें आर्यसमाज प्रतिदिन प्रगति करे यही कामना है।

गत मासकी अपनी १५ दिनकी इस यात्राके साथ अपने संस्कृत केन्द्रोंको संगठित रूप देनेकी दृष्टिसे आर्य समाजके कार्य कर्ताओंने मुझे जो सहयोग दिया उसके लिये मैं उनका आभार मानता हूँ। जिन पांच जिलोंके स्थानोंमें मैं गया वहाँ वहाँ एक जिला समिति बनानेकी जो योजना आर्य कार्य कर्ताओं एवं केन्द्रव्यवस्थापक महानुभावोंके सहयोगसे मैं बना सका उसके लिये मैं उन सबका कृतज्ञ हूँ और आशा करता हूँ कि इस सहयोगके फलस्वरूप प्रत्येक जिलेमें हमारे कमसे कम २०-२५ केन्द्र अवश्य हो जायेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि इस प्रकार हैद्राबाद राज्यके हमारे केन्द्रोंकी आजकी ६० की संख्या बढकर आगामी सत्रके लिये अवश्य दुगुनी हो जाएगी।

हमारे नये केंद्र

११ श्री. बी. बुचीलिंगम गुप्ता पो० **नागरकरनूल**, जि. महबूबनगर

१२ श्री. डॉ. श्रीनाथ तिक्कू पो० **मार्तण्ड (मटन)** ता. अनंतनाग. काश्मीर

१३ श्री. राधेश्याम शर्मा ' दाधीच ', गवर्नमेण्ट हाईस्कूल. पो० **जिन्तूर**, जि. परभणी **(हैद्राबाद)**

१४ श्री. ब जयवेंकटाचार्य, गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, पो० **नारायण पेठ**, जि. महबूबनगर,

१५ श्री. बुचय्या, अध्यापक, सरकारी उन्नत पाठशाला, पो० **कुल्वाकुर्ती**, जि. महबूबनगर,

१६ श्री. परशुराम गोविन्दबापु लखनीकर, समर्थ विद्यालय, पो० **लाखनी**, जि. भंडारा

१७ श्री. किशनराव महिन्द्रकर, पो० **गुरूमिठकाल**, जि. गुलबर्गा

१८ श्री. हरिश्चन्द्र जीवनजी आर्य, हिन्दी विद्या मन्दिर, पो० बो० नं. ८०४९
johannesburg (South Africa)

१९ श्री. ना. वा. तुंगार काव्यतीर्थ, ४०८ नारायण पेठ पो० **पूना २**

२० श्री. सूर्यदेव शास्त्री, हरिचरण हिन्दी हाईस्कूल, पो० **निजामाबाद**, हैद्राबाद दक्खन

२१ श्री. प्राध्यापिका, गर्ल्स हाईस्कूल, पो० **वर्धा**

२२ श्री. विठ्ठलराव सदाशिवराव पेठकर, सरकारी मिडिल स्कूल, पो० **विकाराबाद**, जि. मेदक

२३ श्री. पु. प्र. रोडे, नाथ हाईस्कूल पो० **छींदवाडा**, मध्य प्रदेश

२४ श्री. हेड मास्टर, गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, पो० **वनी** (मध्य प्रदेश)

२५ श्री. प्रभाकर गोविन्द मोहरील, म्युनिसिपल हाईस्कूल, पो० **चिखली** (मध्य प्रदेश)

२६ श्री. काशीनाथ ज्योतिषी, पो० **बिजबिहारा**, ता. अनंतनाग, (काश्मीर)

२७ श्री. गोपाळ गणेश भट्ट मुख्या०, सरकारी हाईस्कूल, पो० **उमरखेड** जि० पुसद

२८ श्री. जशभाई भीखाभाई पटेल, पो० **लांभवेल**, जि. खेडा, वाया-आणंद

२९ श्री. धर्मप्रकाश आर्य अध्यापक, वैदिक धर्म पाठशाला. पो० **चौधर गुडा**, जि. महबूब नगर

३० श्री. टि. बी. पापय्या, पो० **बेलिकट्टा**, ता. महबूब आबाद, जि. वरंगल

३१ श्री. ठेंयाला लक्ष्मी नरसिंहाचार्य, पो० **जफरगड**, जि. वरंगल. रे. स्टे. घणपूर

३२ श्री. देवशंकर गिरजाशंकर शास्त्री, संस्कृत वैदिक महाविद्यालय पो० **सिद्धपूर**, (उ० गु०)

३३ श्री. दुर्गादास बोहरा प्रधानाध्यापक, मिडिल स्कूल, पो० **फुलेरा**, जि. जयपूर

३४ श्री. रामभजन शर्मा उपाध्याय, हिन्दी प्राइमरी स्कूल, पो० **दुदू**, जि. जयपूर

ऋ० ७।७१।३

३२० उत स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥

ऋ० ७।७२।४

३२१ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥ ४ ॥

ऋ० ७।८५।१ (इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप्)

३२२ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

ऋ० ७।८८।४ (वरुणः । त्रिष्टुप्)

३२३ वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ॥ ४ ॥

ऋ० ७।९०।४ (वायुः । त्रिष्टुप्)

३२४ उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥

---

३२० (अश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) इन बुद्धिमान् द्यु और पृथ्वीकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्य पालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है। (३)

३२१ हे अश्विदेवो ! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) जब उषाएं अन्धेरा हटाती हैं तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्रोंको स्तोता गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव उच्चस्थानमें रहकर प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बडे प्रशंसित अर्थात् प्रदीप्त होते हैं। (४)

३२२ (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस भाव रहित बुद्धिको मैं पवित्र समझता हूं। इन्द्र व वरुणके लिये सोमका हवन करते हैं। (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) उषा देवीकी तरह यह स्तुति घीके समान तेजस्वी है। (ता) वे दोनों इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् न उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर हमारी सुरक्षा करें। (१)

३२३ (वसिष्ठं ह वरुणः नावि आ अधात्) वसिष्ठको वरुणने नौकापर चढाया, और (सु-अपाः महोभिः ऋषिं चकार) उत्तम कर्म करनेवाला ऋषिको अपने सामर्थ्योंसे बनाया। (विप्रः स्तोतारं अह्नां सुदिनत्वे यात्) ज्ञानी वरुण स्तोत्रपाठक वसिष्ठके पास उत्तम दिनमें गया और उसके यशको (उषासः ततन्) उषाओंने फैला दिया। (४)

३२४ उनके लिये (अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्) निष्पाप दिनोंकी उषाएं प्रकाशित हो गयी हैं। वे दिन (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) प्रकाशित होकर विशेष ज्योतिको प्राप्त हुए। उन्होंने (उशिजः गव्यं ऊर्वं वि वव्रुः) इच्छा करके गौओंके समूहको प्राप्त किया (तेषां प्रदिवः आपः अनुसस्रुः) उनके लिये द्युलोकसे आये जलप्रवाह प्रवाहित होने लगे हैं। (४)

७।९१।१ (वायुः । त्रिष्टुप्)

३२५ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

ऋ० ७।९९।४ (इन्द्राविष्णू। त्रिष्टुप्)

३२६ उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

ऋ० ८।५।२ (ब्रह्मातिथिः काण्वः। अश्विनौ। गायत्री)

३२७ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा। सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥

ऋ० ८।९।१७ (शशकर्णः काण्वः। अश्विनौ। अनुष्टुप्)

३२८ प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ १७ ॥ अथर्व २०।१४२।२

ऋ० ८।९।१८

३२९ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥ अथर्व २०।१४२।३

ऋ०।८।१९।३१ (सोभरिः काण्वः। अग्निः। प्रगाथः)

३३० तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ ३१ ॥

---

३२५ (पुरा ये वृधासः देवाः) प्राचीन समयके वृद्ध स्तोतागण (कुवित् अंग नमसा) बहुत वार प्रिय स्तोत्रके कारण (अनवद्यासः आसन्) प्रशंसित हुए थे (बाधिताय मनवे) दुःखी मानवके सुखके लिये वे (वायवे) वायुकी और (सूर्येण उषसं अवासयन्) सूर्यके साथ उषाकी स्तुति करते रहे। (१)

३२६ (यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः) यज्ञके लिये उन्होंने विस्तृत स्थान बनाया है। सूर्य और उषाको तथा अग्निको (जनयन्ता) तुम दोनों प्रकट करते हो। हे (नरा) नेता लोगो ! (वृषशिप्रस्य दासस्य चित्) बलवान् और सुरक्षित शत्रुकी (मायाः पृतनाज्येषु जघ्नथुः) कुटिल योजनाओंको युद्धोंमें तुमने विनष्ट किया। (४)

३२७ हे (पृथु-पाजसा दस्रा अश्विना) विशेष सुन्दर शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (मनो युजा रथेन) मनकी इच्छासे जुड जानेवाले रथसे (नृवत् उषसं सचेथे) वीरके समान उषाके पास पहुंचो (२)

३२८ हे देवि ! (सूनृते महि) उत्तम भाषण करनेवाली बडी (उषः) उषा ! (अश्विना प्रबोधय) अश्विदेवोंको जगाओ। हे (यज्ञ होतर्) यज्ञमें हवन करनेवाले ! (आनुषक् मदाय) सतत हर्ष उत्पन्न करनेके लिये (बृहत् श्रवः) बडा अन्न भी दे दो। (१७)

३२९ हे उषा ! (यत् भानुना यासि) जब तू प्रकाशके साथ जाती है और (सूर्येण संरोचसे) सूर्यके साथ प्रकाशती है, उसी समय (अश्विनोः अयं रथः) अश्विदेवोंका यह रथ (नृपाय्यं वर्तिः आयाति) मानवोंके पालन करने योग्य घरके पास पहुंचता है। (१८)

३३० हे (सिष्णो) सिंचित होनेवाले अग्ने ! (तव द्रप्सः) तेरे लिये रखा यह सोमरस (नीलवान्) नीले रंगका है (वाशः ऋत्वियः) तेरे लिये यह प्रिय है और ऋतुके अनुकूल है। (इन्धानः आददे) तुझे प्रदीप्त करनेवाला इसको लेता है। (त्वं महीनां उषसां प्रियः असि) तू बडी उषाओंका प्रिय है और तू (क्षपः) रात्रीके समय (वस्तुषु राजसि) वस्तुओंमें प्रकाश करता है। (३१)

ऋ० ८ । ११ । १४ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ । सतोबृहती)

३३१ ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥ १४ ॥

ऋ० ८ । २७ । २ (मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः । प्रगाथः)

३३२ आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥

ऋ० ८ । ३५ । १ (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)

३३३ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनाऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ४१ । ३ (नाभाकः काण्वः । वरुणः । महापंक्तिः)

३३४ स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन् नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

ऋ० ८ । ४३ । ५ (विरूप आंगिरसः । अग्निः । गायत्री)

३३५ एते त्ये वृथगग्नयः इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥

ऋ० ८ । ४७ । १६ (त्रित आप्त्यः । आदित्योषसः । महापंक्तिः)

३३६ तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

---

३३१ (तौ शुभस्पती) उन दो शुभकर्ता अश्विदेवोंको (दोषा इत्) रात्रीके समयपर और (तौ उषसि) उनको उषःकालमें भी हम बुलाते हैं और (ता रुद्रवर्तनी) उन दोनों रुद्रके मार्गसे आनेवाले अश्विदेवोंको (यामन्) यात्रा करते समय हम बुलाते हैं। हे (वाजिनीवसू रुद्रौ) बलरूप धनसे युक्त और शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (नः रिपवे मर्ताय) हमें शत्रुरूप मनुष्यको (मा परः अतिख्यतं) कभी न कह दो। शत्रुको हमारा पता न लगे ॥ (१४)

३३२ पशु पृथिवी वनस्पती और औषधीको (उषासा नक्तं) सवेरे और शामको (आ गासि) तू स्तुति गाओ। (विश्ववेदसः विश्वे वसवः) सर्व धनवाले सब वसु (नः धीनां अवितारः प्रभूत) हमारी बुद्धियोंके संरक्षक होवो। (२)

३३३ हे अश्विदेवो ! तुम अग्नि इन्द्र वरुण विष्णु आदित्यों वसुओं और रुद्रोंके संघोंसे (सचा भुवा) संयुक्त होकर (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा और सूर्यसे मिलकर (सोमं पिबतं) सोमको पीओ। (१)

३३४ (सः क्षपः परिषस्वजे) उसने रात्रीयोंको घेरा है, (उस्रः मायया निदधे) उषःकालको अपने सामर्थ्यसे धारण किया है। (दर्शतः सः विश्वं परि दधे) दर्शनीय वरुणने विश्वका भी धारण किया है। (वेनीः तिस्रः उषः) उसकी प्रिय तीनों उषाएं (तस्य व्रतं अनु अवर्धयन्) उसके नियमको बढाती हैं। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सब शत्रु मर जांय। (३)

३३५ (एते त्ये अग्नयः) ये वे अग्नि (वृथग् इद्धासः) प्रत्येक प्रदीप्त होनेपर (उषसां केतवः इव) उषाओंके ध्वजोंके समान (समदृक्षत) दीख रहे हैं। (५)

३३६ (तत् अन्नाय) उसी अन्नका सेवन करनेवाले, (तत् अपसे) उसी कर्मको करनेवाले (तं भाग उपसेदुषे) उसी भागका सेवन करनेवाले त्रित और द्वितके हितके लिये हे (उषः) उषा ! तू (दुःस्वप्न्यं वह) दुष्ट स्वप्नके कारणको दूर कर। क्योंकि (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण निष्पाप है तथा (वः ऊतयः सुऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम हैं। (१६)

ऋ० ८।४७।१८ (त्रित आप्त्यः । आदित्योषसः । महापंक्तिः)

३३७ अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्।
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

ऋ० ८।७३।१६ (गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ । गायत्री)

३३८ अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १६ ॥

ऋ० ८।९६।१ (तिरश्चीरांगिरसो, द्युतानो वा मारुतः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३३९ अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १ ॥

ऋ० ९।१०।५ (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री)

३४० आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥

ऋ० ९।४१।५ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री)

३४१ स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

ऋ० ९।७१।७ (ऋषभो वैश्वामित्रः । पवमानः । जगती)

३४२ परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥

---

३३७ (अद्य अजैष्म) आज हमें विजय मिला है (असनाम) लाभ प्राप्त हुआ है (वयं अनागसः अभूम) हम निष्पाप हो गये हैं। हे उषा ! (यस्मात् दुष्वप्न्यात् अभैष्म) जिस दुष्ट स्वप्नसे हम डर रहे थे (तत् उच्छतु) वह दूर हो, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण निष्पाप है, (वः ऊतयः सुऊतयः) आपके संरक्षण उत्तम हैं। (१८)

३३८ (उषा अरुणप्सुः अभूत्) उषा लाल रंगवाली हो गयी है। (ऋतावरी ज्योतिः अकः) सत्यनिष्ठ उस उषाने प्रकाश किया है (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारा संरक्षण समीपके साधनोंसे होवे। (१६)

३३९ (उषासः अस्मै यामं आतिरन्त) उषाओंने इस इन्द्रके लिये अपनी गतिको रोक लिया, (इन्द्राय ऊर्म्याः नक्तं सुवाचः) इन्द्रके लिये रात्रीयां उत्तर रात्रीमें उत्तम स्तोत्र पाठ करती हैं। (अस्मै सप्तमातरः आपः तस्थुः) इस इन्द्रके लिये सात बडे जलप्रवाह स्थिर हुए तथा (नृभ्यः तराय सिन्धवः सुपाराः) वीरोंके पार होनेके लिए नदियां सहज पार होने योग्य बन गयी। (१)

३४० (विवस्वतः आपानासः) इन्द्रके सोमपानके समय (उषसः भगं जनन्त) उषाएं सूर्यको उत्पन्न करती है। (सूराः अण्वं वि तन्वते) प्रसरणशील सोमरसके प्रवाह सूक्ष्म शब्द करते हैं। (५)

३४१ हे (विचर्षणे) प्रगतिशील ! (सः पवस्व) वह तू अब प्रवाहित हो। (मही रोदसी आपृण) बडे आकाश और पृथिवीको भरपूर भर दो (उषाः रश्मिभिः सूर्यः न) उषाएं किरणोंके साथ सूर्यको जैसी उत्पन्न करती है, वैसा प्रकाश भर दो। (५)

३४२ (परा व्यक्तः) दूरसे दीखनेवाला (अरुषः) लाल रंगवाला (दिवः कविः वृषा) दिव्य कवि और बलवान (त्रिपृष्ठ) तीन स्थानोंमें रहनेवाला (गाः अभि अनविष्ट) सोमरस गौवोंके दूधमें मिश्रित हुआ है। (सहस्रणीतिः यतिः) हजारों मार्गोंसे जानेवाला परंतु पात्रमें आनेवाला (परायतिः रेभः न) दूरतक पहुंचनेवाला स्तोताके समान (पूर्वीः उषसः विराजति) पहिली उषाओंके समय विराजता है। (७)

ऋ० ९ । ७५ । ३ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती)

३४३ अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अमीमृतस्य दोहना अनूषताऽधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥ ३ ॥

ऋ० ९ । ८३ । ३ (पवित्र आंगिरसः । पवमानः सोमः । जगती)

३४४ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥

ऋ० ९ । ८४ । २ (वाच्यः प्रजापतिः । पवमानः सोमः । जगती)

३४५ आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन् त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥

ऋ० ९ । ८६ । १९ (सिकता निवावरी । पवमानः सोमः । जगती)

३४६ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभिः ॥ १९ ॥

ऋ० ९ । ८६ । २१ (पृश्नयोऽजाः । पवमानः सोमः । जगती)

३४७ अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥

---

३४३ (द्युतानः कलशान् अव अचिक्रदत्) तेजस्वी सोम कलशोंमें शब्द करता हुआ पहुंच गया, (नृभिः येमानः हिरण्यये कोशे आ) मनुष्यों द्वारा निचोडा हुआ सोम सुवर्ण पात्रमें रखा है, (ऋतस्य दोहना ईं अभि अनूषत) यज्ञके समय गौका दोहन करते हैं और (त्रिपृष्ठे अधि) तीन स्थानोंमें विराजनेवाला सोम (उषसः विराजति) उषाओंके समय प्रकाशता है। (३)

३४४ (अग्रियः पृश्निः उषसः अरूरुचत्) अनेक रंगोंके धुरीणने उषाओंको प्रकाशित किया (वाजयुः वृषा भुवनानि बिभर्ति) बलवान् समर्थ वीरने भुवनोंका धारण करता है। (मायाविनः अस्य मायया ममिरे) माया जाननेवाले इसकी कुशलतासे उत्पन्न हुए । (नृचक्षसः पितरः गर्भं आदधुः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले पितरोंने गर्भका धारण किया है। (३)

३४५ (यः अमर्त्यः भुवनानि आतस्थौ) जो अमर सोम सब भुवनोंमें रहा है। (यः सोमः तानि विश्वानि परि अर्षति) वही सोम उन सब भुवनोंके चारों ओर रहता है। (संचृतं विचृतं अभिष्टयः कृण्वन्) उसका संयोग और वियोग इष्ट प्राप्तिके लिये करता हुआ (इन्दुः) यह सोम (उषसं न सूर्यः सिषक्ति) सूर्यके समान उषाके पीछे चलता है। (२)

३४६ (मतीनां वृषा) मतियोंका बल बढानेवाला, (विचक्षणः) विशेष सूक्ष्म दृष्टीसे देखनेवाला, (अह्नः उषसः दिवः प्रतरिता) दिन उषा और प्रकाशको बढानेवाला सोम प्रवाहित हुआ। (सिन्धूनां क्राणा) नदियोंको उत्पन्न करनेवाला सोम (कलशान् अवीवशन्) कलशोंमें प्रविष्ट हुआ। (मनीषिभिः इन्द्रस्य हार्दि आविशन्) मननशील लोकोंके स्तोत्रोंके साथ इन्द्रके हृदयमें सोम प्रविष्ट हुआ। (१९)

३४७ (अयं पुनानः उषसः विरोचयत्) यह पवित्र होनेवाला सोम उषाओंको प्रकाशित करता है। (अयं सिन्धुभ्यः लोककृत् अभवत् उ) यह सोम नदियोंके लिये पर्याप्त स्थान देनेवाला हुआ है। (अयं त्रिःसप्त आशिरं दुदुहानः) यह सोम इक्कीस प्रकार पात्रोंमें दूधके साथ मिलाया जाता है, (मत्सरः सोमः हृदे चारु पवते) आनंद देनेवाला सोम हृदयको आनन्द देनेके लिये प्रवाहित होता है। (२१)

ऋ० ९।९०।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप्)

३४८ उरु गव्यूतिमभयानि कृण्वन् त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥

ऋ० १०।१।१- (त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

३४९ अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १ ॥ वा. य. १२ । १३

ऋ० १०।६।३

३५० ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥ ३ ॥

ऋ० १०।११।३- (आङ्गिर्हविर्धानः । अग्निः । जगती)

३५१ सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ ३ ॥

ऋ० १०।२९।१- (ऐन्द्रो वसुकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३५२ प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २ ॥

---

३४८ (उरु गव्यूतिः अभयानि कृण्वन्) विस्तीर्ण गोचर भूमि करके स्थानोंको निर्भय किया, (समीचीने पुरंधी आपवस्व) अब परस्पर संलग्न हुए विशेष बुद्धिमान द्यावा पृथिवीके लिये सोम प्रवाहित होवे । (अपः उषसः स्वः गाः सिषासन्) उदक, उषा, दिव्य लोक और प्रकाश इसको आधीन करके (अस्मभ्यं महः वाजान् संचिक्रदः) हमारे लिये विशेष बल लाकर तूने इसकी घोषणा की । (४)

३४९ (उषसां अग्रे) उषाओंके आनेके पूर्व (बृहत् ऊर्ध्वः अस्थात्) बडा ऊंचा होकर यह अग्नि ठहरा है । (तमसः निर्जगन्वान्) अन्धकारसे बाहर आकर (ज्योतिषा आ अगात्) प्रकाशसे प्रकट हो गया है । (रुशता भानुना स्वंगः अग्निः) तेजस्वी प्रकाशसे सुन्दर अंगवाला अग्नि (जातः विश्वा सद्मानि आ अप्राः) उत्पन्न होते ही सब स्थानोंको भरपूर भर देता है । (१)

३५० (यः विश्वस्याः देववीतेः ईशे) जो सब प्रकारकी देव पूजाओंका स्वामी है, (विश्वायुः उषसः व्युष्टौ ईशे) जो पूर्णायु उषाओंके प्रकाशनेपर स्वामित्व करता है, (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निमें (मना हवींषि) मननीय स्तोत्र और हविका (शूषैः अरिष्टरथः आस्कभ्नाति) शत्रुओंसे अप्रतिहत रथवाला याजक सुरक्षित रखता है । (३)

३५१ (सो चित् नु) वही (भद्रा क्षुमती यशस्वती) कल्याणकारिणी स्तुति योग्य यशस्विनी (स्वर्वती उषा) सूर्य लानेवाली उषा (मनवे उवास) मनुष्यका हित करनेके लिये उदयको प्राप्त हुई है । (यत् ईं उशन्तं क्रतुं होतारं अग्निं) अब इस यज्ञकी इच्छा करनेवाले देवोंको बुलानेवाले अग्निको याजक (विदथाय जीजनन्) यज्ञ करनेके लिये उत्पन्न करते हैं । (३)

३५२ (ते अस्याः उषसः) इस उषाके और (अपरस्याः) और दूसरी उषाके समयमें (नृणां नृतमस्य नृतौ प्र स्याम) मानवोंका अत्यंत हित करनेवाले उस इन्द्रके युद्धके नृत्यमें हम रहेंगे । (यः रथः ससवान् असत्) जो दातृत्व करनेवाला तुम्हारा रथ है वह (त्रिशोकः) तेजस्वी तीन शिखरोंवाला रथ (कुत्सेन) कुत्सके साथ (शतं नॄन् अनु आवहत्), सैकडों मनुष्योंको पार ले गया था (२)

ऋ० १० । ३१ । ५ - (कवष ऐलूषः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्)

३५३ इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥ ५ ॥

ऋ० १० । ३१ । ७

३५४ किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥ ७ ॥

ऋ० १० । ३५ । २ - (लुशो धानाकः । विश्वेदेवाः । जगती)

३५५ दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन् त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

ऋ० १० । ३५ । १

३५६ अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥ १ ॥

ऋ० १० । ३५ । ३

३५७ द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥ ३ ॥

---

३५३ (इयं सा क्षा) यह (भूमी उषसां इव भूयाः) उषाओंके समान प्रिय हो । (यत् ह क्षुमन्तः शवसा समायन्) जहां अन्न लेकर बलवान् लोग इकठे होते हैं । (अस्य जरितुः स्तुतिं भिक्षमाणाः) इस स्तोताकी स्तुतिमें हम अपना भाग रखते हैं (नः शग्मासः वाजाः उप आयन्तु) इसलिये हमारे पास कल्याणकारी धन आजाएं । (५)

३५४ (किं स्वित् वनं) कौनसा वह वन है, (कः उ सः वृक्षः आस) और कौनसा वह वृक्ष था कि (यतः द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः) जहांसे ये द्यावा पृथिवी तैयार किये गये हैं ? ये (इतऊती अजरे संतस्थाने) स्वयं रक्षित जरारहित और सुस्थिर रहनेवाले हैं । (अहानि उषसः पूर्वीः जरन्त) दिन और उषा पहिलेसे जिसने उत्पन्न की उसकी स्तुति गाते हैं। (७)

३५५ (दिवः पृथिव्योः अवः आवृणीमहे) द्यु और पृथिवीसे संरक्षण हम चाहते हैं, (सिन्धून् मातॄन्) सिन्धु माताएं (शर्यणावतः पर्वतान्) शार्यणावत्के पर्वत इन सबसे हम संरक्षण प्राप्त करना चाहते हैं। (उषासं सूर्यं अनागास्त्वं ईमहे) उषा और सूर्यसे हम निष्पापत्व चाहते हैं । (सुवानः सोमः) निचोड कर तैयार किया सोम (अद्य नः भद्रं कृणोतु) आज हमारा कल्याण करे । (२)

३५६ (त्ये इन्द्रवन्तः अग्नयः अबुध्रं) वे इन्द्रके साथ रहनेवाले अग्नि जाग उठे हैं, (उषसः व्युष्टिषु ज्योतिः भरंतः) वे उषाका प्रकाश होनेपर तेज भर देते हैं । (मही द्यावापृथिवी अपः चेततां) बडी द्यावापृथिवी कर्मोंकी प्रवृत्ती बढावें (अद्य देवानां अवः आ वृणीमहे) आज हम देवोंसे संरक्षण प्राप्त करना चाहते हैं । (१)

३५७ (अद्य द्यावापृथिवी) आज द्यु और पृथिवी ये दोनों (मही मातरा) बडी माताएं (अनागसः न) निष्पाप ऐसे हमारा (सुविताय त्रायेतां) कल्याण करनेके लिये हमारा संरक्षण करें । (उच्छन्ती उषा) प्रकाशनेवाली उषा (अघं अप बाधतां) पापको दूर करे (समिधानं अग्निं स्वति ईमहे) प्रदीप्त अग्निको हमारा कल्याण करनेके लिये प्रार्थना करते हैं । (३)

ऋ० १० । ३५ । ५

३५८ प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥ ५ ॥

ऋ० १० । ३५ । ६

३५९ अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥ ६ ॥

ऋ० १० । ३९ । १ (काक्षीवती घोषा । अश्विनौ । जगती)

३६० यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥ १ ॥

ऋ० १० । ४१ । १ (सुहस्त्यो घौषेयः । अश्विनौ । जगती)

३६१ समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥ १ ॥

ऋ० १० । ४५ । ५ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

३६२ श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥ वा. य. १२ । २२

---

३५८ (याः सूर्यस्य रश्मिभिः प्र सिस्रते) जो उषाएं सूर्यके किरणोंके साथ चलती हैं तथा जो (उषसः व्युष्टिषु) उषाओंके प्रकाशित होनेपर (ज्योतिः भरंतीः) तेजको भर देती हैं । ये (भद्राः) कल्याण करनेवाली उषाएं (अद्य नः श्रवसे व्युच्छत) आज हमारा कल्याण करनेके लिये प्रकाशती रहें । (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रदीप्त अग्निकी अपने कल्याणके लिये हम प्रार्थना करते हैं । (५)

३५९ (अनमीवा उषसः आ चरन्तु) रोगरहित उषाएं हमारे पास आवें । (अग्नयः बृहत् ज्योतिषा नः उत् जिहतां) तीनों अग्नि बडे ज्योतिके साथ हमारे सामने प्रदीप्त हों। (अश्विना तूतुजिं रथं आयुक्षातां) अश्वि देव शीघ्रगामी रथको जोडकर तैयार करें । हम (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रदीप्त अग्निकी कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं । (६)

३६० हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (यः वां सुवृत् परिज्मा रथः) जो आपका उत्तम भ्रमण करनेवाला पृथ्वीपर चारों ओर घूमनेवाला रथ है जो (दोषां उषासः हविष्मता हव्यः) रात्रीमें और उषःकालमें याजकके द्वारा बुलाने योग्य है । (वयं शश्वत्तमासः) हम शाश्वत रहनेवाले (वां इदं तं सुहवं नाम) आपके इस प्रार्थनीय नामको (पितुः न) जैसा पिताका नाम लेते हैं उस तरह (हवामहे) लेते हैं । (१)

३६१ (त्यं पुरुहूतं उक्थ्यं त्रिचक्रं समानं रथं) उस अनेकों द्वारा प्रशंसित तीन चक्रवाले दोनोंके एक ही रथको (सवना गनिग्मतं) हमारे सोम सवनमें ले आइये । (परिज्मानं विदथ्यं) चारों ओर घूमनेवाले यज्ञमें जाने योग्य उस रथको (वयं) हम (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकाशित होनेपर (सुवृक्तिभिः हवामहे) उत्तम स्तोत्रोंके गानके साथ बुलाते हैं । (१)

३६२ (श्रीणां उदारः) संपत्तियोंका उगम स्थान, (रयीणां धरुणः) धनोंका आधार (मनीषाणां प्रार्पणः) ज्ञानीजनोंको संतोष देनेवाला, (सोम-गोपाः) सोमका रक्षक, (वसुः) वैभवका निधि, (सहसः सूनुः) सामर्थ्यका उद्गम (अप्सु राजा) जलोंमें विराजमान, (इधानः) प्रदीप्त होनेपर (उषसां अग्रे) उषाओंके सामने (विभाति) प्रकाशता है । (५)

ऋ० १०।५५।४ (बृहदुक्थो वामदेव्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्)

३६३ यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम्।
यत् ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥

ऋ० १०।५८।८ (बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। मन आवर्तनम्। अनुष्टुप्)

३६४ यत् ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥

ऋ० १०।६४।३ (गयः प्लातः। विश्वेदेवाः। जगती)

३६५ नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥ ३ ॥

ऋ० १०।६५।१० (वसुकर्णो वासुक्रः। विश्वेदेवा जगती)

३६६ त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥ १० ॥

ऋ० १०।६७।५ (अयास्य आंगिरसः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्)
अथर्व २०।९१।५

३६७ विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत्।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

---

३६३ हे (उषः) उषा! (विभानां प्रथमा) तेजस्वी ताराओंमें पहिली (यत् औच्छः) जब तू प्रकाशने लगी, तब (येन पुष्टस्य पुष्टं अजनयः) उससे तुमने पुष्टको भी पुष्ट बनाया। (ते यत् अवरं जामित्वं) तेरा बंधुभाव हीनसे भी हीनके साथ रहता है, इस तरह (परस्याः महत्याः) परमश्रेष्ठ ऐसे तुम्हारा (एकं महत् असुरत्वं) एक बडा सामर्थ्य है। (४)

३६४ (यत् ते मनः) जो तेरा मन (यत् सूर्यं यत् उषसं) सूर्य और उषाके पास (दूरकं जगाम) दूरतक गया हो (ते तत् आवर्तयामसि) तेरे उस मनको मैं वापस खींच लेता हूं (इह क्षयाय जीवसे) यहां उसका निवास हो और उसका जीवन हो। (८)

३६५ नराशंस, (अगोह्यं पूषणं) प्रकट पूषा, (देवेद्धं अग्निं) विबुधों द्वारा प्रदीप्त अग्नि इनकी (गिरा अर्चसे) वाणी द्वारा पूजा करता हूं। सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोकमें रहनेवाला यम, त्रित, वायु, उषा, रात्री और अश्विदेव इनकी भी मैं प्रशंसा करता हूं। (३)

३६६ त्वष्टा, वायु, ऋभु, (यः ओहते) जो सोचता है, दिव्य होता, उषा, (वृत्रखादं सुमेधसं बृहस्पतिं) वृत्रनाशक उत्तम बुद्धिमान बृहस्पति, (इन्द्रियं सोमं) इन्द्रको प्रिय सोम इन सबकी (धनसा स्वस्तये) धन प्राप्तिके लिये और कल्याणके लिये (ईमहे) स्तुति करते हैं। (१०)

३६७ (पुरं विभिद्य) शत्रु नगरका नाश किया, (अपाचीं ई शयथ) पीछे भागनेवाले इस शत्रुका नाश करके सुलाया, और (उदधेः त्रीणि साकं निः अकृन्तत्) समुद्रसे तीनोंको साथ साथ बाहर निकाल दिया। इस बृहस्पतिने उषा सूर्य और किरणोंको, अथवा गौओंको, इन तीनोंको बाहर निकाला, (अर्कं विवेद) स्तोत्रका ज्ञान प्राप्त किया (स्तनयन् इव द्यौः) जिस तरह गर्जना करनेवाली द्यौ होती है वैसा यह स्तोत्र-पाठ होने लगा। (५)

ऋ० १०। ७३। ६ (गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३६८ सनामाना चिद्‌ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥ ६ ॥

ऋ० १०। ७८। ७ (स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । जगती)

३६९ उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययिनो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥ ७ ॥

ऋ० १०। ८५। १९ (सावित्री सूर्या ऋषिका । चन्द्रमाः । अनुष्टुप्)
अथर्व. ७। ८६।२; ७। ८१। १; १४। १। २४

३७० नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥ १९॥

ऋ० १०। ८८। १२ (आंगिरसो मूर्धन्वान् वामदेव्यो वा । सूर्य-- वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप्)

३७१ विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥ १२ ॥

ऋ० १०। ८८। १८

३७२ कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥ १८॥

३६८ (यथा इन्द्रः उषसः अनः अवाहन्) जैसा इन्द्रने उषाका रथ तोड दिया, वैसा (अस्मै स-नामाना चित् ध्वसयः) इस भक्त का हित करनेके लिये समान नामवाले दोनों शत्रुओंका इसने नाश किया। (ऋष्वैः निकामैः सखिभिः अगच्छः), महान शत्रुनाशकी इच्छावाले मित्रवीरोंके साथ शत्रुपर तुमने आक्रमण किया, (प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ) स्थिर हुए शत्रुओंका हृदयके बलसे नाश किया। (६)

३६९ (उषसां केतवः न) उषाओंके ध्वज जैसे ये मरुत् वीर (अध्वर-श्रिय.) यज्ञका वैभव बढानेके लिये जानेवाले जैसी (अञ्जिभिः नः) अलंकारोंसे अपनी शोभा बढाते हैं उस तरह (शुभंयवः व्यश्वितन्) सुशोभित रहनेवाले वीर स्वयं चमकते हैं। (सिन्धवः न ययिनः) नदियोंके समान वेगवान् (भ्राजत्-ऋष्टयः) चमकनेवाले भाले लेकर ये वीर (परावतः न योजनानि ममिरे) दूरसे आकर कई योजनोंका आक्रमण करते हैं ! (७)

३७० (जायमानः नवः नवः भवति) उत्पन्न होते ही जो नया नया सा होता है, (अह्नां केतुः) दिनोंका ध्वज जैसा यह (उषसां अग्रं एति) उषाओंके आगे जाता है। (आयन् देवेभ्यः भागं वि दधाति) यह आकर देवोंके लिये हविर्भाग देता है ऐसा यह (चन्द्रमाः दीर्घं आयुः प्रतिरते) चन्द्रमा हमारी आयु दीर्घ करता है। (१९)

३७१ (विश्वस्मै भुवनाय) सब भुवनोंके हितके लिये (वैश्वानरं अग्निं) सबके नेता अग्निको (देवाः अह्नां केतुं) अकृण्वन्) देवोंने दिनोंका ध्वज जैसा बनाया। तब (यः विभातीः उषसः आततान) उसने तेजस्वी उषाओंको आकाशमें फैलाया और (अर्चिषा तमः यन्) प्रकाशसे अन्धकारको दूर करके (अपः ऊर्णोति) जलोंको प्रवाहित किया। (१२)

३७२ (अग्नयः कति) अग्नि कितने हैं ? (सूर्यासः कति) सूर्य कितने हैं ? (उषासः कति) उषायें कितनी हैं ! (आपः स्वित् कति उ) जलप्रवाह कितने हैं ? (हे पितरः उपस्पिजं वः न वदामि) हे पितरो ! उपहास करनेके लिये आपसे यह मैं नहीं पूछ रहा। हे (कवयः) ज्ञानिओ ! (कं विद्मने वः पृच्छामि) ज्ञान प्राप्त करनेके लिये यह मैं आपसे पूछ रहा हूं। (१८)

ऋ० १० । ८८ । १९

३७३ यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥ १९ ॥

ऋ० १० । ८९ । १२ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३७४ प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥ १२ ॥

ऋ० १० । ९१ । ४ (अरुणो वैतहव्यः । अग्निः । जगती)

३७५ प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥ ४ ॥

ऋ० १० । ९१ । ५

३७६ तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥ ५ ॥

ऋ० १० । ९२ । २ (शार्यातो मानवः । विश्वेदेवाः । जगती)

३७७ इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥ २ ॥

---

३७३ हे (मातरिश्वः) वायु ! (यावन् मात्रं सुपर्ण्यः उषसः) जिस प्रमाणसे उत्तम पंखवाली उषाएँ (प्रतीकं न वसते) अपने आदर्श सूर्यका जैसा तेज धारण करती हैं, (यज्ञं आयन् ब्राह्मणः) यज्ञमें आनेवाला ज्ञानी ब्राह्मण (होतुः अवरः निषीदन्) होताके नीचे बैठकर (तावत् उप दधाति) उतना उतना प्राप्त करता है । (१९)

३७४ (शोशुचत्या उषसः केतुः न) तेजस्वी उषाओंके ध्वजके समान, हे इन्द्र ! (ते असिन्वा हेतिः प्रवर्तता) वैसा तेजस्वी प्रहार करनेवाला शस्त्र शत्रुपर चले । (दिवः आ सृजानः अश्मा इव) आकाशसे गिरनेवाले विद्युत्के समान (तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान्) तपे शस्त्रसे द्रोह ही जिनका मित्र है ऐसे शत्रुओंका नाश कर । (१२)

३७५ हे (प्रजानन्) ज्ञानी अग्ने ! तू (इळायाः पदे घृतवन्तं ऋत्वियं योनिं आसदः) इळाके घृतयुक्त तथा कालके अनुरूप स्थानपर बैठा है । (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यके किरणोंके समान और (उषसां एतयः इव) उषाओंकी गतिके समान (अ-रेपसः) निष्कलंक (ते आ चिकित्रे) तेरे रूप दीख रहे हैं । (४)

३७६ हे अग्ने ! (तव श्रियः) तेरी शोभाएं (वर्ष्यस्य विद्युतः इव) वर्षाकालकी बिजुलियोंके समान तथा (उषसां केतवः न) उषाओंके ध्वजोंके समान (चित्राः चिकित्रे) विलक्षण दीखती हैं । (यत् अभिसृष्टः) जब खुला होकर (ओषधीः वनानि च) औषधियों और वनोंको (स्वयं आस्ये अन्नं) स्वयं अपने मुखमें अन्नके समान (परिचिनुषे) डालता है । (५)

३७७ (उभये) दोनों देव और मानव (इमं अंजस्पां) इस त्वरासे रक्षा करनेवाले (धर्माणं अग्निं) धर्मरूप अग्निको (विदथस्य साधनं) यज्ञका साधन (अकृण्वत) करते रहे । (उषसः पुरोहितं) उषाके अग्रभागमें रहनेवाले (अरुषस्य तनू-न-पातं) लाल किरणोंके शरीरको न गिरानेवाले (अक्तुं यह्वं न) घृतसे लिप्त महान सूर्यको जिस तरह (निंसते) स्पर्श करते हैं । (२)

ऋ० १० । ९५ । २ (ऐलः पुरूरवाः । उर्वशी ऋषिका, पुरूरवा देवता । त्रिष्टुप्)

३७८ किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥

ऋ० १० । ९५ । ४

३७९ सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन् दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ ४ ॥

ऋ० १० । १११ । ७ (वैरूपोऽष्टादंष्ट्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

३८० सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥ ७ ॥

ऋ० १० । १२२ । ७ (चित्रमहा वासिष्ठः । अग्निः । जगती)

३८१ त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥ ७ ॥

ऋ० १० । १२७ । ३ (कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिः । गायत्री)

३८२ निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

ऋ० १० । १२७ । ७

३८३ उप मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातय ॥ ७ ॥

---

३७८ (एता वाचा किं कृणवा) इस भाषणसे क्या लाभ होगा ? (उषसां अग्रिया इव) उषाओंमेंसे पहिली उषाके समान (अहं तव प्राक्रमिषं) मैंने तुझे छोड दिया है । हे पुरूरवः ! (पुनः अस्तं परा इहि) फिर अपने घरको जा । (अहं वातः इव) मैं वायुके समान (दुरापना अस्मि) स्वाधीन रखनेके लिए कठिन हूं । (२)

३७९ हे उषा ! (सा श्वशुराय वसुवयः दधती) वह स्त्री अपने श्वशुरके लिये हृष्टपुष्ट करनेवाला अन्न देती है । (यदि वष्टि) यदि वह पतिको चाहती है तब वह (अन्ति-गृहात् अस्तं ननक्षे) समीपके घरसे पतिके स्थानको जाती है । (यस्मिन् चाकन्) जहां इच्छा करती हुई (दिवा नक्तं वैतसेन श्नथिता) दिनमें और रात्रीमें आलिंगनसे उसे प्राप्त करती है । (४)

उषा अपने श्वशुरकी सेवा उत्तम रीतिसे करती है और अपनी पतिको भी संतुष्ट रखती है । इस तरह हरएक स्त्री करे ।

३८० (यत् उषसः सूर्येण सचन्त) जब उषाएं सूर्यके साथ मिलती हैं तब (अस्य केतवः चित्रां रां अविन्दन्) इसके किरण विलक्षण शोभाको प्राप्त करते हैं । (यत् दिवः नक्षत्रं न आ ददृशे) जिस समय द्यु लोकका नक्षत्र सूर्य नहीं दीखता है, तब (पुनः यतः न किः अद्धा नु वेद) पुनः आनेवाले सूर्यके किरणको कोई ठीक तरह जान नहीं सकता । (७)

३८१ (अस्याः उषसः व्युष्टिषु) इस उषाके प्रकाशने पर (त्वां इत् दूतं कृण्वाना मानुषाः अयजन्त) तुझे दूत करनेवाले मनुष्य तुम्हारे लिये यज्ञ करते हैं । (देवाः त्वां महयाय्याय वावृधुः) देवोंने तुझे महत्त्व बढानेके लिये बढाया है । हे अग्ने ! (अध्वरे आज्यं निमृजन्तः) यज्ञमें घी की आहुती दे सकते हैं । (७)

३८२ (आयती देवी) आनेवाली रात्री देवीने (स्वसारं उषसं निः उ अस्कृत) अपनी बहिन उषाके लिये मार्ग किया और (तमः अप इत् उ हासते) अन्धकार दूर हुआ । (३)

३८३ (कृष्णं तमः व्यक्तं) काला अन्धकार स्पष्टतासे (पेपिशत् मा उप अस्थित) चिपकता हुआ मेरे पास आ रहा है । हे उषा ! (ऋणा इव यातय) ऋणोंको दूर करनेके समान उसको दूर कर । (७)

उषा ऋणको दूर करती है । अन्धकार ही ऋण है । उषा उसको दूर करती है । इसी तरह घरकी स्त्री बहुत खर्च न करती हुई धन बचावे और ऋणको दूर करे ।

ऋ० १० । १३४ । १ (मान्धाता यौवनाश्वः । इन्द्रः । महापंक्तिः)

३८४ उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी
जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥

ऋ० १० । १३८ । १ (अंग औरवः । इन्द्रः । जगती)

३८५ तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥ ॥ १ ॥

ऋ० १० । १३८ । ५

३८६ अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥ ५ ॥

ऋ० १० । १७२ । ४ (संवर्त आंगिरसः । उषाः । द्विपदा विराट्)

३८७ उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥ ४ ॥ अथर्व. १९ । १२ । १

यजु० ३ । १०

३८८ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

---

३८४ हे इन्द्र ! (उषा इव) उषाके समान (यत्) जब (उभे रोदसी आपप्राथ) दोनों द्यावापृथिवीको तुमने प्रकाशसे भर दिया तब (महीनां महान्तं) बडोंसे बडा और (चर्षणीनां सम्राजं) मानवोंके सम्राट् ऐसे (त्वा) तुझे (जनित्री देवी अजीजनत्) माता देवीने उत्पन्न किया इसलिये (जनित्री भद्रा अजीजनत्) वह जननी कल्याण करनेवाली करके प्रसिद्ध हुई। (१)

३८५ हे इन्द्र ! (तव सख्येषु) तेरी मित्रतामें रहकर (त्ये वह्नयः) उन कार्यकर्ताओंने (ऋतं मन्वानाः) सत्यधर्मका पालन करते हुए (वलं व्यदर्दिरुः) बलके टुकडे किये। (यत्र) वहीं (उषसः दशस्यन्) उषाका प्रकाश करके (कुत्साय अपः रिणन्) कुत्सके लिये जलप्रवाहको खुला करके तुमने (मन्मन्) मननपूर्वक (अह्यः च दंसयः) शत्रुओंका नाश किया। (१)

३८६ (अयुद्धसेनः) इन्द्रके साथ कोई सेना युद्ध नहीं कर सकती (विभ्वा) वह विशेष प्रभावी है (विभिन्दता वृत्रहा) वह शत्रुका नाशक है और वृत्रका घात करनेवाला है (तेजते तुज्यानि दाशत्) प्रकाश चाहनेवालेको प्रकाश देता है। (इन्द्रस्य अभिश्नथः वज्रात्) इन्द्रके घातक वज्रसे (अबिभेत्) सब शत्रु भयभीत होते हैं। (शुन्ध्यूः प्राक्रामत्) सूर्य ऊपर आया है और (उषा अनः अजहात्) उषाने अपना रथ छोड दिया है। (५)

ऋ० ४।३०।८ में भी उषाका रथ तोडनेका वर्णन है।

३८७ (उषा) उषा (स्वसुः तमः अप संवर्तयति) अपनी बहिन रात्रीका अन्धकार दूर करती है और (सुजातता वर्तनिं) अपने सौजन्यसे प्रकाशका मार्ग खुला करती है। (४)

३८८ (देवेन सवित्रा सजूः) प्रेरक सविता देवके साथ (इन्द्रवत्या उषसा सजूः) तथा इन्द्रके साथ आनेवाली उषा, और देवताके साथ समान प्रीति करनेवाला (सूर्यः जुषाणः) सूर्य हमारे ऊपर वैसीही प्रीति करे। (वेतु स्वाहा) हमारी आहुति भक्षण करे। यह हमारा अर्पण है। (१०)

यजु० १० । १६

३८९ हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च । आ रोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

यजु० ११ । १७

३९० अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ॥ १७ ॥

यजु० ११ । ७४

३९१ सजूरुषा अरुणीभिः ॥ ७४ ॥

यजु० १३ । २८

३९२ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

ऋ० १ । ९० । ७

यजु० २० । २३

३९३ समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ॥ वैश्वानरज्योतिः भूयासं विभून् कामान् व्यश्नवै । ॥ २३ ॥

यजु० २० । ३६

३९४ समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

---

३८९ हे (वरुण मित्र) शत्रु निवारक [दक्षिणबाहो व] मित्ररूप [वामबाहो] ! (गर्तं आरोहतं) तुम दोनों यजमान पर चढकर कार्य करो । (हिरण्यरूपा) तुम सुवर्णके समान तेजस्वी हो, (उषसः विरोके) उषाका प्रकाश होनेपर अपने कार्यमें प्रवृत्त होनेवाले (उभौ इन्द्रा) तुम दोनों इन्द्रके समान सामर्थ्यवान हो । तुम्हारी सहायतार्थ (सूर्यः च उदिथः) सूर्यका उदय हुआ है । (ततः दितिं अदितिं च चक्षाथां) पश्चात् शत्रुसेनाका नाश और अपनी सेना सुरक्षित है यह देख लो । तुम मित्र हो और तुम शत्रुनिवारण करनेवाला हो । (१६)

३९० (अग्निः उषसां अग्रं अनु अख्यत्) अग्नि उषः-कालका प्रारंभ प्रकाशसे करता है । (जातवेदाः प्रथमः अहानि अनु) सर्व ज्ञानी अग्नि प्रथम दिवसके प्रकाशको करता है । (सूर्यस्य रश्मीन् पुरुत्रा च अनु) सूर्यके किरणोंको बहुत प्रकारसे प्रकाशित करता है । (द्यावा पृथिवी अनु आ ततन्थ) उसने द्यावा-पृथिवीको क्रम पूर्वकव्याप्त किया है । (१७)

३९१ उषा अरुण वर्णकी गौओंके साथ आती है । (७४)

३९२ (नक्तं उषसः मधु) रात्री और उषा हमारे लिये मधुर हों । (पार्थिवं रजः मधुमत्) पृथ्वी और रजोलोक हमारे लिये मधुर हो । (नः पिता द्यौः मधु अस्तु) हमारा पिता द्युलोक हमारे लिये मधुर हो । (२८)

३९३ पृथिवी उषा और सूर्य (सं आववर्ति) वारंवार भ्रमण करते हैं (इदं विश्वं जगत् सं) यह सब जगत् भ्रमण कर रहा है । (वैश्वानरज्योतिः भूयासं) मैं सर्व नेताकी ज्योतिरूप बनूं और (विभून् कामान् व्यश्नवै) व्यापक संकल्पोंको मैं पूर्ण करूंगा । (२३)

३९४ (इन्द्रः समिद्धः उषसां अनीके) इन्द्र तेजस्वी होकर उषःकालमें (पुरोरुचा पूर्वकृत् वावृधानः) आगे बढनेवाली कान्तिके साथ पूर्व दिशाको तेजस्वी करके बढनेवाले (त्रिंशता त्रिभिः देवैः) तैतीस देवोंके साथ रहनेवाले (वज्रबाहुः) वज्रधारी इन्द्रने (वृत्रं जघान) वृत्रको मारा और (दुरः वि ववार) द्वारोंको खोल दिया । (३६)

यजु० २० । ४१

३९५ उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥ ऋ० १०।३६।१

यजु० २० । ६१

३९६ उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः ।
सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

यजु० २१ । १७

३९७ उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।
त्रिष्टुप्छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

यजु० २१ । ३५

३९८ होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवा । ॥ ३५ ॥

यजु० २१ । ५०

३९९ देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।
बलं न वाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं ॥ ५० ॥

यजु० २४ । ४

४०० कृष्णाग्निरल्पाग्निर्महाग्निस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

यजु० २७ । ४५

४०१ संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।
उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां
मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् ।
प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय ॥ ४५ ॥

---

३९५ (उषासा नक्ता) उषा और रात्री ये दोनों (बृहती) बडी विशाल देवतायें हैं, ये दोनों (सुदुघे पयस्वती) उत्तम दूध देनेवाली दुधारू गौवें जैसी (बृहन्तं शूरं इन्द्रं) बडे शूर इन्द्रके लिये यज्ञ करती हैं ये (सुरुक्मे) दोनों तेजस्वी देवता (देवानां देवं यजतः) देवोंके देवके लिये यज्ञ करती हैं। (पेशसा ततं तन्तुं संवयन्ती) जैसी दो बुननेवाली स्त्रियाँ सुन्दर फैले हुए धागोंका वस्त्र बुनती हैं। (४१)

३९६ हे अश्विदेवो ! उषा और रात्री ये दोनों (दिवा इन्द्रं सायं इंद्रियैः) दिनके समय इन्द्रके साथ और सायंकाल इन्द्रकी शक्तियोंके साथ संयुक्त करती हैं। (संजानाने) ये सब जानती हैं (सुपेशसा) सुंदर है और (सरस्वत्या समंजाते) विद्याके साथ रहनेवाली हैं। (६१)

३९७ (यह्वी सुपेशसा उषे) बडी सुंदर रात्री और उषा, (अमर्त्याः विश्वेदेवाः) अमर सब देव त्रिष्टुप् छन्द, (पष्ठवाट् गौः) भारवाहक बैल, ये पांच (इह) इस इन्द्रमें (इंद्रियं, वयः दधुः) वीर्य और बल धारण करते है। (१७)

३९८ (सुपेशसा उषे नक्तं दिवा) सुंदर उषा, रात्री तथा दिन इनमें होता यज्ञ करे। (३५)

३९९ देवी उषा और रात्री, अश्विदेव, (*सुत्रामा सरस्वती*) संरक्षक सरस्वती इन्द्रमे बल और मुखमें उत्तम वाणीकी स्थापना करें। (५०)

४०० कृष्णाग्नि, अल्पाग्नि तथा महाग्नि इनकी देवता उषा है। (४)

४०१ तू संवत्सर, उषा, अहोरात्र, अर्धमास, मास, ऋतु है। ये तुम्हारा बल बढावें। संचलन आगमन, आकुंचन प्रसरण करो और अपना प्रभाव बढाओ। (४५)

यजु० १८। ६

४०२ होता यक्षदुषे० ॥ ६ ॥

यजु० २७। १७

४०३ ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

यजु० २८। १४

४०४ देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ॥ १४

यजु० २८। ३७

४०५ देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधत् ॥ ३७ ॥

यजु० २९। ६

४०६ अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

यजु० २९। ३१

४०७ आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ३१ ॥

अथर्व० ५। १२। ६; ऋ० १०। ११०। ६

यजु० २९। ३७

४०८ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

ऋ० १। ६। ३

यजु० ३४। ३३

४०९ उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ३३ ॥

---

४०२ होता उषाके लिये यज्ञ करे। (६)

४०३ (ते अस्य दिव्ये योषणे) वे इस अग्निकी दिव्य स्त्रियां, वे उषा और रात्री हैं। ये हमारे यज्ञकी रक्षा करें। (१७)

४०४ उषा और रात्री ये दो देवियाँ यज्ञमें इन्द्रको बुलाती हैं। (१४)

४०५ (देवी उषासानक्ता) उषा और रात्री ये दोनों इन्द्रका बल बढाती हैं। अनुष्टुप् छन्दके मंत्रोंसे इन्द्रमें सामर्थ्य बढाते हैं। (३७)

४०६ मित्र और वरुण मध्यमें संचार करते हैं। यह यज्ञका मुख है। उषा और रात्री ये सुवर्णके समान तेजस्वी, उत्तम हैं यज्ञके स्थानमें मैं इनको रखता हूं। (६)

४०७ उषा व रात्री यज्ञस्थानमें रहें। ये पवित्र, दिव्य, विशाल, तेजस्वी सुवर्णके समान कान्तिवाली हैं। (३१)

४०८ हे अग्ने! तू (अकेतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानीको ज्ञान देता है, (अपेशसे पेशः) रूपरहितको रूप देता है। हे मानवो! (उषाद्भिः सं अजायथाः) यह अग्नि उषाओंके साथ प्रकट होता है। (३७)

४०९ हे (वाजिनीवति उषः) अन्नवाली उषा! (अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर) हमारे लिये वह उत्तम धन भरपूर भर दे कि जिससे (येन तोकं तनयं च धामहे) हम बालबच्चोंका उत्तम संवर्धन कर सकेंगे। (३३)